जागोरी की त्रैमासिक पत्रिका
जनवरी–मार्च 2010

हम सबला

इस अंक में

स्त्री कथाएं

हम सबला

जनवरी-मार्च 2010

अतिथि संपादक
जया श्रीवास्तव

संपादन एवं अनुवाद
जुही जैन

संपादन सहयोग
कल्याणी
सीमा श्रीवास्तव
रत्नमंजरी

मुख पृष्ठ
पोस्टर डिज़ाइनः चन्द्रलेखा—'स्त्री'
साभारः सदानन्द मेनन

सज्जा व मुद्रण
सिस्टम्स विज़न
दूरभाष 26811195
systemsvision@gmail.com

इस अंक में

हमारी बात — जया श्रीवास्तव — 1

कहानी

- हंसिनी — उषा यादव — 3
- सावचेती — विजयदान देथा — 9
- घरवाली — इस्मत चुगताई — 11
- स्त्री का पत्र — रवीन्द्रनाथ ठाकुर — 19
- उतरन — वाजिदा तबस्सुम — 28
- अकेली — मन्नू भंडारी — 32
- जानकी — विजयलक्ष्मी चौहान — 36

बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर, नई दिल्ली 110 017
ई-मेल jagori@jagori.org • वेबसाइट www.jagori.org
दूरभाष 26691219, 26691220
हेल्पलाइन 26692700

हमारी बात

इंसान की मूलभूत भावनाएं, अनुभूतियां और बहुत से जीवन-मूल्य शाश्वत, यानी हमेशा कायम रहते हैं। इनकी इन्द्रधनुषी धाराएं ज़िन्दगी को रंग-रूप देती रहती हैं। प्यार, घृणा, दर्द, द्वेष, करुणा, ममता, जोश, श्रद्धा और आनन्द जैसे अहसास चिरकाल से हमारे दिलों में घर किए हुए हैं। इनके साथ ही चलते हैं इनके अलग-अलग स्वरूप, आपसी रिश्ते, टकराहटें और सामंजस्य बनाने के प्रयास। इस तरह की महसूसियत हर दिल में धड़कती है, चाहे हम किसी देश-प्रदेश के वासी हों, किसी मज़हब या दर्शन के अनुयायी हों, मर्द हों या औरत हों, अमीर हों या गरीब हों।

सच्चाई, ईमान, इन्साफ़, वफ़ादारी और बुद्धि जैसे मूल्य भी सदियों से विविध सभ्यता-संस्कृतियों का हिस्सा रहे हैं। कितने ही समाजों ने अपने-अपने तरीके से इन्हें परिभाषित किया और मान्यता दी है। बहुत से इंसानी अनुभव, जो इन भावनाओं व मान्यताओं के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं, हर युग की धारा में बहते हैं। हर युग इन्हें जीता है; ये चिरन्तन हैं। वाह्य जगत के परिवर्तन भले ही आते रहें, पर मानव-अस्तित्व की ये पंखुड़ियां हमेशा फूटती रहती हैं।

काल के अनन्त छोरों से विश्व के अनेक युगदृष्टा (यानी जीव और जगत पर गहन दूर-दृष्टि रखने वाले) रचनाकार स्त्री-पुरुषों ने, भावनाओं और उनके मेल या द्वन्द्व को, अपनी संस्कृति-भाषा, अपने युग-समाज के सन्दर्भ के साथ, शब्द दिए हैं, उन्हें अभिव्यक्त किया है। कविता, कहानी, नाटक और उपन्यास जैसी विधाएं जीवन के मूल श्रोतों में जन्म लेती हैं। इंसानी जीवन में हमेशा चलने वाली प्रवृत्तियों को साहित्य वाणी प्रदान करता है।

'हम सबला' के इस अंक में कुछ जाने-माने साहित्यकारों की कुछेक रचनाओं से हम रूबरू होना चाहते हैं। इनमें से कुछ के साथ शायद हमारा-आपका परिचय हो। लेकिन इस तरह की मार्मिक रचनाएं दोहराने से बासी नहीं होतीं, बल्कि बार-बार पढ़ने से हम रसास्वादन की नई गहराइयों तक पहुंचते हैं।

ये कहना भी सही नहीं होगा कि साहित्य कठिन या क्लिष्ट होता है। चाहे वो सूर, मीरा या कबीर हों, चाहे प्रेमचन्द, दुष्यन्त या सर्वेश्वर हों- इनकी बातें किसके दिल को नहीं छूतीं? अच्छा साहित्य, ज़रूरी नहीं कि कठिन ही हो। और अगर कुछ बातें पूरी तौर से समझ में नहीं भी आतीं तो कोई आफ़त नहीं है। बात दिलचस्प होती है तो हम समझने की कोशिश भी करते हैं और कहीं से थोड़ी इल्म भी ले आते हैं। तथाकथित कम 'पढ़े-लिखे' लोग ज़िन्दगी की सच्चाइयां देखकर खुद-ब-खुद समझ की सीढ़ियां चढ़ लेते हैं या किसी से मदद भी ले लेते हैं।

बहरहाल, ये रचनाएं उन विषयों और गुत्थियों पर पैनी नज़र डाल रही हैं जिनमें हम-आप अक्सर उलझे रहते हैं। ये रचनाएं उन मुस्कुराहटों, उन आंसुओं से सराबोर हैं, जो हमारी, आपकी, सबकी हैं। ये हमें सोचने और महसूस करने के मौके देती हैं। बहुत से सुगबुगाते सवाल नए रूप में सामने आ जाते हैं और दिल-ओ-दिमाग रंग-बिरंगे जवाबों की खोज में लग जाते हैं। सतही-सपाट जवाब पा लेना आसान हो सकता है पर सच्चाई के ताने-बाने में उलझते हुए, कुछ-कुछ नया और रंग-बिरंगा बुन पाना, एक खास नज़र, एक खास कशिश और एक खास अंदाज़-ए-बयां खोजते हैं। श्रेष्ठ चिन्तक-लेखक इस तरह का बहुत कुछ कर गुज़रे हैं। विश्व-साहित्य ऐसी रचनाओं से भरा हुआ है जो ज़िंदगी का आईना हैं। सारे ऊहापोह और कश्मकश यहां जीवन्त हो जाते हैं।

यहां झलकियां हैं औरत के विविध रूपों की। उसकी ज़िन्दगी के उतार-चढ़ावों की और उन पर पैर जमाने की कोशिशों कीं। उसके दिल की तहों में पैठी खुशी और गम की परतें इनमें उभर आई हैं। कितनी ज़िंदगियां हमारे इर्द-गिर्द बिखरी पड़ी हैं जिनकी झलक हम यहां देख रहे हैं। मन्नू भण्डारी की 'अकेली'- सोमा बुआ को देखिए जिनके पति होकर भी नहीं है और जो समधियाने जाने की सारी तैयारी हुलस कर करती हैं, पर बुलावा नहीं आता। वाजिदा तबस्सुम की 'उतरन' चमकी जनम से उतारे कपड़े पहन-पहन कर जवान हुई पर शहज़ादी पाशा को ज़िंदगी भर अपनी जूठन पर जीने के लिए मजबूर किया। विजयदान देथा की 'सावचेती'- सियारन यानी स्त्री अपने सियार को धता बता कर चैन से चांद-सूरज के साथ अठखेलियां करती है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'स्त्री के पत्र' की मंझली बहू, मृणाल और बिन्दु - समाज की दृष्टि में एक सुन्दर और एक कुरूप एक अनूठे रिश्ते में एक दूसरे में अपनी ताकतें पाती हैं, अपने रास्ते तलाशती हैं। 'घरवाली' की लाजो में क्या हमें नहीं दिखाई पड़ता उस दबंग औरत का अक्स जो समाज को धता बताकर अपनी मर्ज़ी के अनुसार जीने का हौसला रखती है? 'जानकी'- आज की जानकी, रामायण की जानकी, युग-युगों की जानकी, वैदेही, सीता- क्या कुछ भी बदला नहीं है? क्या नज़रें बदली हैं? क्या जानकी के आत्मबल को, सीता की स्वयंभू शक्ति को भी देखने की ज़रूरत है? ये सारी रचनाएं औरत की चेतना और औरत की मजबूरियों के साथ-साथ उनसे मुक्ति का रास्ता भी दिखाती हैं। मृणाल के शब्दों में "तुम्हारी शरण से विमुक्त" - विमुक्त यानी 'सुरक्षा' और 'मर्यादा' के दारे से निकलकर अपने तरीके से जीने की आज़ादी, अपनी शर्तों पर जीने की आज़ादी।

उम्मीद है कि कहानियों का ये काफ़िला हमें-आपको इस तरह की अन्य रचनाओं को पढ़ने और उन पर चिन्तन-मनन करने की और खुद से भी कुछ रचने-लिखने की प्रेरणा देगा।

जया श्रीवास्तव

हंसिनी

उषा यादव

'तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ पम्मी, थोड़ी देर सो जाओ अब। बहुत जग चुकी हो।' नींद का झोंका खाती निशा ने आजिज़ कंठ से तीन वर्षीय बेटी की खुशामद की।

बेटी कोई कम थी भला? तत्काल उसने भी माँ की मुद्रा में दोनों हाथ जोड़ दिए— 'तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ मम्मी, थोड़ी देर जग जाओ अब। बहुत सो चुकी हो।'

बेटी की हाज़िरजवाबी पर निशा को हँसी आ गई। सच, लगातार दो-ढाई घंटे से बच्ची उसका मन मोह रही है, पर वह इन बाल-क्रीड़ाओं का आनन्द लेने की मनःस्थिति में है कहाँ? इस समय उसकी प्राथमिकता सिर्फ़ नींद है। कम से कम घण्टे भर की गहरी नींद।

रात नौ बजे जम्मूतवी स्टेशन पर रेलगाड़ी में सवार होने से पहले तीन घंटे का भीड़ भरा बस का सफ़र। उससे पहले पूरी दोपहर यात्रा की तैयारी। और उससे भी पहले सुबह के वक्त का, दोनों बच्चों की चिल्ल-पों और घरेलू कामों के बवालों में पता नहीं कब फुर्र हो जाना।

सोचने बैठें तो पूरा पोथा तैयार हो जाएगा।

कल रात शायद छुटके के पेट में दर्द था, इसने तबियत से जगाया। परसों रात रवि देर से एक शादी से लौटे, लेटने में ही बारह बज गये। उसके पहले...

छोड़ो, रोज़ का पचड़ा है यह तो।

हाँ, रेल पर चढ़ने के बाद अवश्य उसने हलकापन महसूस किया था- चलो, रिज़र्वेशन होने से रात अब आराम से कटेगी। सुबह दिल्ली स्टेशन पर उतरते समय तन-मन तरोताज़ा रहेगा। कल ही परीक्षा केन्द्र पर पहुंचकर लेक्चररशिप पात्रता परीक्षा देनी है। इसके लिए पढ़ाई के भूले-बिसरे बिन्दुओं को दिमाग में सिलसिलेवार बैठाना ज़रूरी है। इस उलझन और तनाव को सिर्फ़ वही समझ सकती है, कोई दूसरा नहीं। इम्तहान की तैयारी न हो सकने का असंतोष व्यक्त करते ही रवि ने फौरन ताना दिया था— 'डिग्री क्या जालसाज़ी से मारी है, यार? तुम तो यूनिवर्सिटी टॉपर हो न?'

बहुत कुछ कहना जानती है वह भी, पर गृह कलह के अंदेशे से बात आगे नहीं बढ़ाती। शब्द होंठों तक आकर रुक जाते हैं— यूनिवर्सिटी में टॉप अपने माता-पिता के घर रहकर किया था, जहाँ सिर्फ़ पढ़ाई-लिखाई से नाता था। इस घर के खटराग किसी से छिपे हैं? बहू की सारे दिन की मशक़्क़त को दरकिनार करके सासू माँ घर के पापड़-बड़ी-अचारों का शौक फरमाती हैं। शादी के एक साल के भीतर एक लड़की जन दी थी, पर उनकी पोता खिलाने की हौंस ने दूसरी संतान का बोझ ढोने को मजबूर किया। अब भी कहां चैन से जीने देता है यह घर। एक आमदनी में खर्च न चल पाने का मानसिक दबाव डालकर नौकरी करवाने पर तुला है। वैसे कहीं ले चलने के नाम पर पचासों बहाने बनते, किन्तु लेक्चररशिप के इम्तहान के नाम पर...

'मम्मी, ओ मम्मी, वो वाले अंकल क्या सोते हुए गाना गा रहे हैं?

पम्मी ने एकाएक कंधा पकड़कर हिलाया, तो निशा चौंक कर होश में आई 'शीऽऽ' करके उसने जल्दी से बेटी को बरजा। धीरे से समझाया— 'कुछ लोगों की नींद में खर्राटे लेने की आदत होती है। अंकल भी सोते हुए खर्राटे ले रहे हैं।'

'मैं भी सोते हुए खर्राटे लेती हूँ?'

'नहीं।'

'पापा लेते हैं?'

'पम्मी, बहुत हो चुका, चुप हो जाओ अब।' निशा ने बिटिया को पहले धमकाया, फिर मनुहार भरे कंठ से दुलारा— 'मेरी रानी गुड़िया, अब सो जाओ तुम। देखो, छोटा भइया, पापा, डिब्बे के सारे अंकल-आंटी सोए हुए हैं। सिर्फ़ तुम जाग रही हो और तुम्हारी वजह से मुझे भी जागना पड़ रहा है।... न?'

'हाँ।' पम्मी ने स्वीकार किया और झट रानी गुड़िया बनकर बर्थ पर लेट गई— 'मम्मी, मुझे कंबल ओढ़ा दो। मैं सोऊंगी। तुम भी सो जाओ।'

अपनी तरकीब सफल होते देख निशा मुदित हुई। उसने पम्मी को कंबल ओढ़ाया। अपने लिए जगह बनाकर लेटने को हुई ही थी कि छुटके राम कुनमुना उठे। फुर्ती से पर्स से दूध की बोतल निकाल कर, बच्चे की नींद टूटने के भय से उसने तत्परता से उसके मुँह से लगा दी।

बिटर-बिटर ताकती पम्मी अगले ही क्षण कंबल फेंककर उठ बैठी और बोल पड़ी— 'मुझे भी भूख लगी है। दूध पिऊँगी।'

'तुम मम्मी-पापा के साथ खाना खा चुकी हो न, चुपचाप सो जाओ।'

'उहं!' लड़की ठुनकी।

देखो बेटे, यह घर नहीं रेलगाड़ी है। दूध खत्म हो गया तो छोटा भइया सारी रात रोएगा। तुम तो इसकी दीदी हो न, समझदार हो। ज़िद मत करो।'

'ऊं... ऊं... दूध।'

लड़की फिर मचली, तो डिब्बे में इधर-उधर निगाह फेंक, सहयात्रियों को सोता पाकर, भिंचे कंठ से बेटी पर बरस पड़ी निशा— 'चंडालिनी कहीं की। कितनी देर खून पियेगी मेरा? सोती है कि बुलाऊँ झोली वाले बाबा को? आकर तुझे पकड़ ले जाएं।'

'नहीं।' तीन साल की दुधमुंही बालिका घिघियाई और सहम कर उसने आंखे मूंद लीं।

निशा को अपनी कठोरता पर ग्लानि हुई। नन्हीं बच्ची का कोई कसूर नहीं। आखिर कितना सोएगी बेचारी? पहले दोपहर में डांट-डपट कर सुलाई गई। फिर शाम को भीड़ भरी बस में क्लान्ति अनुभव कर खुद सो गई। उस वक्त रवि को टोका था उसने कि इसे जगाए रहो, वरना रात में नहीं सोएगी। पर चुप्पी साध गए श्रीमान्। अपना तात्कालिक स्वार्थ उन्हें बच्ची के सोये रहने में जो दिख रहा था।

एक ठंडी सांस निशा के होठों से निकली। थके तन को थोड़ी जुम्बिश देते हुए उसने पम्मी की ओर देखा— डांट खाकर छोकरी सो गई थी। यानी अब कुछ देर वह भी अपने हाथ-पैर सीधे कर सकती थी। पर छुटका तभी दुबारा कुनमुनाया। ज़रूर सू-सू या पॉटी...

उसकी आशंका सच निकली। बच्चा वास्तव में गंदगी में सना पड़ा था।

सफ़ाई-अभियान सम्पन्न कराने के बाद छुटके ने पेट-पूजा की फरमाइश करते हुए अपनी नन्हीं दंतुलियां दिखाईं तो निशा रीझ उठी। अपनी नींद-थकान भूलकर उसने बच्चे को चूमा और झुककर बर्थ के नीचे से टोकरी निकाली।

पर यह क्या? पता नहीं कब और कैसे टोकरी में रखा दूध का डिब्बा लुढ़क कर खुल गया था और सारा दूध...

छोटे बच्चे के साथ बगैर दूध के लंबा सफ़र काटने की कल्पना ही कष्टप्रद थी। किन्तु जल्दी ही इस अवसन्न अवस्था से उबर कर निशा ने पर्स से ग्लूकोज़ के बिस्कुटों का पैकेट निकाला और एक बिस्कुट चूर-चार करके बच्चे को खिलाने लगी।

नौ माह का शिशु बिस्कुट से बहल भले जाए, पेट भरने की तृप्ति नहीं पा सकता था। हताशा और बेबसी से निशा की आँखे भीग आईं। अपनी नींद की बात भूलकर, बच्चे को गोद में लेकर वह थपकने लगी।

सहयात्रियों में से कोई कभी खांसता-खखारता। प्लेटफार्म पर गाड़ी रुकी देखकर खिड़की के शीशे पर आँखें गड़ा, स्टेशन का नाम पढ़ने की चेष्टा करता। बीड़ी-सिगरेट सुलगाता, टॉयलेट के लिए उठता। आधी रात को बच्चा गोद में लिए जागती महिला के प्रति हर आँख संवेदनशील हो उठती। सिर्फ़ एक शख्स को उसकी परेशानी का अहसास न था और वह था मध्य बर्थ पर घोड़े बेचकर सोया हुआ उसका पति।

अव्यक्त क्षोभ से तिलमिला उठी निशा। रोष के साथ-साथ मन में अभिमान भी जागा— ठीक है सोये रहें हज़रत। वह जगाएगी भी नहीं। जो संतान उसने पैदा की है, उसे पालने की ज़िम्मेदारी भी उसी की है। अपने बच्चों को सारी रात अकेले दम पर संभाल लेगी।

पर सारी परेशानी मस्तिष्क के रंगमंच पर भरतनाट्यम करती निद्रा-सुन्दरी के अद्भुत लास्य को लेकर थी। निशा का सिर कभी दाएं, कभी बाएं झुकता। लुढ़कने को होती देह बमुश्किल संभलती। आंखों में भरी अजीब-सी कड़वाहट, दिमाग में बढ़ता शून्यता बोध और काफी देर से एक मुद्रा में बैठे रहने से सोए हुए बाएं पैर की झुनझुनी, जैसे उस नृत्य की संगत करने में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने वाले कलाकार थे। इन सबका जादू उसके सिर पर चढ़कर बोल रहा था और वह विवश-असहाय भाव से इनके सम्मोहन-जाल में बंधती चली जा रही थी।

जैसे-तैसे छुटका सोया तो डिब्बे की हलकी रोशनी में निशा ने अपनी कलाई घड़ी पर निगाह डाली— सुबह के पौने पांच बजे थे। हालांकि यह जागरण की बेला थी, पर अभी दो घंटे की नींद लेकर वह अपने थके तन-मन को राहत दे सकती थी।

कमर सीधी करने से पहले एक बार टॉयलेट हो आने की इच्छा ने ज़ोर मारा तो निशा अपनी बर्थ से नीचे उतरी। सोये पैर की वजह से वह लड़खड़ाई भी। जैसे-तैसे हाथ से रगड़कर उसने पैर को चलने लायक बनाया और आगे बढ़ी। किन्तु लौटकर आने के बाद जो दृश्य देखा, माथा पकड़कर खड़े रह जाने के सिवाय कुछ न कर सकी।

कच्ची नींद में सोया छुटका उसके हटते ही खुद तो जगा ही था, सोई हुई पम्मी को भी जगा चुका था। और अब मुस्कराता छुटका और रुँआसी पम्मी उसके धैर्य की परीक्षा लेने के लिए तैयार बैठे थे।

निशा ने आव देखा न ताव, कुछ देर पहले का अपना संकल्प भूल, रवि को कंबल सहित झकझोर दिया— 'उठो जी, कितना सोओगे? नीचे आकर बच्चों को संभालो।'

'ऐंऽऽ—' गहरी नींद से एकाएक जगा दिए जाने पर हड़बड़ाया रवि कुछ समझ न सका।

'नीचे उतरो। बच्चों को संभालो। मैं अब एक मिनट भी इन्हें झेल नहीं सकती।'

'बात क्या है यार?' रवि जंभाई लेते हुए उठ बैठा और कलाई घड़ी में समय देख, तनिक रुखाई से बोला— 'अरे, अभी तो सिर्फ़ पांच बजे हैं इतनी जल्दी मुझे क्यों जगा दिया?'

'क्योंकि मैं रात भर जगी हूँ। मुझे भी थोड़ी नींद-आराम की ज़रूरत है।'

'तो सोइये न, रोका किसने है? सुप्त सौंदर्य की रखवाली के लिए पति नामधारी जीव का पहरा देना ज़रूरी है क्या?' रवि की तीखी आवाज़ गूँजी।

'रवि।'

अपने क्रोध के उबाल को संयम-जल के छींटों से शांत करने में निशा को पूरी ताकत लगा देनी पड़ी। क्षणिक विराम के बाद ठंडी आवाज़ में बोली वह— 'प्लीज़, मेरी बात समझने की कोशिश करो और बेवजह बहस करने के बदले नीचे आकर बच्चों को संभालो।'

'जब दिन भर तुम इम्तहान में फंसी रहोगी, तब बच्चों को कौन संभालेगा?'

'मतलब?... मैं समझी नहीं।'

मतलब यह कि जब दिन भर मुझे ही बच्चे संभालने हैं, तो इस वक्त थोड़ा आराम करके कौन-सा गुनाह कर रहा था?... बिना बात जगा कर रख दिया।'

'रात भर सोये तो हो तुम!'

'तुमने देखा था?' रवि और ज़्यादा उखड़ गया—'मैडम, यहाँ सारी रात जगते हुए कटी है। रेलगाड़ी में मुझे नींद-वींद नहीं आती। बस देह सीधी हो जाती है। मुश्किल से आध घंटा पहले ज़रा आँख लगी थी... हुँह...'

निशा में लड़ने की ताकत कहाँ शेष थी? गंभीर कंठ से सिर्फ़ इतना बोली— 'नीचे उतरो और बच्चों को संभालो। तुम्हारे बिस्तर में अब कुछ देर मैं सोना चाहती हूँ।'

'ठीक है।' रवि चिढ़कर बोला और नीचे उतर आया।

दोनों बच्चों ने मुस्कान बिखेरकर पिता का स्वागत किया, तो उसका सारा गुस्सा काफूर हो गया। बर्थ पर बैठते हुए बोला—

'आओ पम्मी, अब हम लोग एक मज़ेदार खेल खेलेंगे।'

'भइया भी खेलेगा?'

'नहीं, वह मम्मी के साथ ऊपर जाकर सोएगा।'

'ओह रवि, तुम्हें बताया न, मैं कुछ देर चैन से सोना चाहती हूँ। बच्चे के साथ यह कैसे मुमकिन होगा?'

'तो क्या मैं दोनों बच्चों को एक साथ झेलूँगा? ...न बाबा न।' रवि ने तुरंत कंधे झटक दिए। 'मैंने भी तो सारी रात दोनों बच्चों को अकेले ही....'

निशा ने न्याय की दुहाई देनी चाही, पर रवि की आँखों से स्फुलिंग झरते देख, बात अधूरी छोड़कर छुटके को उठा लिया। मध्य बर्थ पर अपने साथ लिटाकर, कंबल में दबोच कर, अशक्त हाथों से थपकने लगी— 'सो जा... राजदुलारे सो जा...'

इसके बाद उसकी नींद से बोझिल पलकें मुंदती चली गईं। नीचे से आती बाप-बेटी की आवाज़ें श्रवण सीमा से और और दूर जाने लगी—

'पम्मी बेटे, कहो गाय।'

'गाय।'

'गाय का बच्चा।'

'गाय का बच्चा।'

'गाय दूध देती।'

'गाय गुड़ खाए।'

'गाय गुड़प्प।'

और फिर किसी पाताल लोक से आता ठहाका उसकी नींद में गड़घ हो गया। थपकी देते हाथ कब रुके, पास में लेटा छुटका कंबल की गिरफ़्त से कब आज़ाद हुआ, थोड़ी देर बैठकर ताली बजाने के बाद उसके पेट के सहारे कब खड़ा होने लगा, निशा जान नहीं सकी। वह तो नींद की अंधेरी गुफाओं के विस्तार में धँसती जा रही थी।

अचानक वह हड़बड़ा कर जागी और अपने पेट के सहारे उछलते छुटके का संतुलन न संभाल सकने के कारण नीचे गिरते देख बदहवास हो उठी। किंतु बच्चे को पकड़ने की जी-जान की कोशिश के बावजूद सफल न हो सकी और इसी बदहवासी में शिशु को लिए-दिए खुद भी धड़ाम से नीचे आ गिरी।

रवि का एक चीख के साथ गिरे हुए बच्चे को उठाना, सब ओर से छू-टटोलकर चोट की गंभीरता का अनुमान लगाना, गोरे-गदबदे शिशु के लिए सहयात्रियों की अछोर चिन्ता का पारावार उमड़ना...

डिब्बे के फर्श पर पड़ी निशा लाचारी की हालत में सब देखती रही। उठने की भरसक कोशिश के बावजूद उससे उठा नहीं गया। दो बच्चों के जन्म के बाद पहले जैसी दुबली-छरहरी तो रह नहीं गई थी। उस पर अचानक गिरने से कमर के चोटिल होने के साथ-साथ पांव के बाएं पंजे में भी मोच आ गई थी। पर उसकी चिंता सिर्फ़ बच्चे के लिए थी। दस आदमियों के बीच ऐसी विषम परिस्थिति में पड़ जाने का लज्जा-बोध भी कम नहीं था।

'बहनजी को तो उठाइए श्रीमान जी। लगता है, ज़्यादा चोट खा गई हैं।' तभी किसी सहयात्री ने संवेदनशील कंठ से कहा।

रवि ने यह बात या तो सुनी नहीं या सुनकर भी अनसुनी कर दी। वह बच्चे को संभालने में व्यस्त रहा।

जो भी हो, निशा खुद कोशिश करके उठी और गहन लज्जा तथा आंतरिक अपराध भावना से भरी हुई पास की सीट पर बैठ गई।

बच्चा लगातार रोए जा रहा था। पर धीरे-धीरे उसका रोना, सिसकियों में तब्दील हो गया और फिर सिसकियाँ भी थम गईं। हालांकि उसकी कोमल देह रह-रहकर अभी भी हिल उठती और वह थोड़ा ठहर कर दुबारा रोना चालू कर देता, पर ज़ाहिर था उसे ज़्यादा चोट नहीं आई है।

रवि के हँसाने पर जब बच्चा हँस दिया और सहज दिखने लगा, तो उसकी ओर से निश्चित होकर वह पत्नी की ओर मुड़ा। अधरों को तिरछा करते हुए ताना दिया— 'मैडम, अगर आप इतना अनईज़ी फील कर रही थीं तो मुझसे कह सकती थीं। मेरे मासूम बेटे से कौन सी दुश्मनी थी, जो उसे गेंद की तरह नीचे पटक दिया?'

निशा के अधर कंपकंपाए। बच्चे के गिरने की कैफ़ियत उसे देनी होगी? और वह भी इस शख्स को जो रात भी लंबी ताने पड़ा रहा है। यह 'बापपन' उस वक्त कहाँ चला गया था, जब बच्चों ने सारी रात उसे जगाया, जब अभी कुछ देर पहले गंदगी में सने बच्चे की उसने सफ़ाई की, जब...यानी वह इस आदमी की संतान की आया भर है? पालने-पोसने का ठेका उसका, बच्चे की आँख में आँसुओं की जवाबदेह भी वही?

पर मुसाफ़िरों से भरे डिब्बे में, बात आगे न बढ़ाने की नीयत से वह चुप रही। नज़रें झुकाए बैठी रही। हाँ, कुछ पल बाद यह महसूस करके कि छुटका उसकी गोदी में आना चाह रहा है, उसने अपनी दोनों बाहें ज़रूर बच्चे की तरफ़ बढ़ा दीं।

पर उसकी इस अनाधिकार चेष्टा को बड़ी कठोरता से कुचल दिया रवि ने। बढ़े हाथों को धकियाते हुए चीखा— 'खबरदार, जो मेरे बच्चे को हाथ लगाने की जुर्रत की। बेहया, ज़लील औरत, तू माँ है?... माँ के नाम पर कलंक है। अपनी आरामतलबी में खलल पड़ता देख एक दुधमुँहे को नीचे पटक सकती है। तुझमें और कंस में कोई फ़र्क़ है क्या?'

'रवि प्लीज़ थोड़ा शांत रहो।' निशा ने धीमी आवाज़ में समझाना चाहा तो वह और भड़क उठा— 'क्यों शांत रहूँ? मेरे बेटे की जान चली जाती तो उसे लौटा देती तू?'

'दरअसल मैं रात भर की जगी थी...'

'तो मुझसे कहती। मैं ज़हर की एक गोली खिलाकर हमेशा के लिए सुला देता। साली कामचोर, निकम्मी औरत। बच्चा पालने का सलीका भी नहीं जानती। हर वक्त पांव पसार कर सोने के सिवाय कुछ आता है तुझे?'

निशा ने दबी निगाहों से चारों ओर देखा— आस-पास बैठे सहयात्री सपाट चेहरा लिए मौन धारण किए हुए थे। आजकल पराये मामले में कोई नहीं बोलता। उस पर यदि मियां-बीबी का आपसी मसला हो, तो और चुप्पी साध ली जाती है। पर बहरा तो उनमें कोई नहीं था न। मियां के हाथों बीबी की फजीहत होती देख अपने मन में जाने क्या सोचते होंगे?

अपने तन की कीमती साड़ी, मैचिंग बिंदिया-चूड़ियाँ, कानों की झिलमिलाती बालियाँ और पास में पड़ा चमड़े का बड़ा पर्स, सब कुछ इस समय निशा को एकदम निरर्थक और बोझिल प्रतीत होने लगा। फिजूल इतनी बन-ठन कर रेलगाड़ी में चढ़ी वह। देखने वाले सोचते होंगे कि इस चमक्को की औकात मर्द के पांव की जूती के बराबर भी नहीं है।

घर के अंदर, गुदगुदे डबल बैड पर, अगर पति ने उसके तलवे भी चाट लिए तो किसने देखा? इज़्ज़त बनती है चार आदमियों के सामने। मुसाफिरों से भरे डिब्बे में इस प्रकार अपमानित किए जाने की पीड़ा क्या सचमुच असह्य नहीं है?

वह धीरे से बुदबुदाई— 'तुम चुप नहीं रह सकते, रवि? मन में जितनी भड़ास है, घर जाकर निकाल लेना। यहाँ चार आदमियों के बीच मुझे और ज़्यादा नक्कू मत बनाओ। ऐसी घटना कभी भी, किसी के साथ भी घट सकती है।'

'नहीं, ऐसी बेवकूफ़ी सिर्फ़ तू ही कर सकती है। दो बच्चों की माँ हुई, फूहड़पन जस-का-तस बरकरार रहा। अब और किसी उम्र में तमीज़ सीखेंगी, मैडम?'

रवि के गुस्से की आग शायद और देर तक लपटें बिखेरती, पर छुटके को मचलता देख कर उसे अपने आवेश पर विराम लगाना पड़ा।

'यह भूखा है।' निशा ने दबी आवाज़ में बताया।

बच्चे को गोद में लिए हुए ही रवि ने दूध की बोतल तलाशी। उसे खाली पाकर गुर्राया— 'कहाँ रखा है दूध?'

'खत्म हो चुका।' निशा ने सहमते हुए सूचना दी।

'घर से लेकर नहीं चली?' यह ज़िम्मेदारी भी मेरी थी क्या?'

'चली तो थी, पर ढक्कन खुल जाने से डिब्बे का सारा दूध टोकरी में फैल गया।'

'फूहड़, बेशऊर औरत। छोटे बच्चों के साथ सफ़र करने का सलीका नहीं जानती। तमीज़ के नाम पर सिफर।'

'लाओ, मैं इसे बिस्कुट खिला दूँ।' निशा ने पास पड़े पर्स को उठाकर ग्लूकोज़ की बिस्कुटों का पैकेट निकालते हुए कहा।

'ज़्यादा तेज़ी मत दिखाना समझी। बच्चे को अगर हाथ भी लगाया तो मैं वहीं हाथ तोड़कर फेंक दूँगा।' रवि ने अंगारे उगले।

एक बार फिर निशा की आँखें बरसने को हो आईं— वह बच्चे को हाथ भी नहीं लगा सकती? उसका इतना अपमान और वह भी भरी भीड़ में? ...कौन सोचता होगा कि वह एम.ए. में अपने विषय की टॉपर है और लेक्चररशिप पात्रता परीक्षा देने जा रही है। पलट कर वह भी अगर कुँजड़िनों की शैली में बात करने लगे, तो इस आदमी की क्या इज़्ज़त रह जाएगी। सिर्फ़ अपनी शालीनता की वजह से चुप है और उसकी सहिष्णुता को अपराध की स्वीकृति मानते हुए हज़रत धमकाए चले जा रहे हैं।

पर्स से निकाला ग्लूकोज़ के बिस्कुटों का पैकेट हाथ में पकड़े हुए निशा किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठी।

'मम्मी, मुझे बिस्कुट दे दो, मैं खाऊँगी।' बड़ी देर से मुँह में उंगली डाले बैठी पम्मी अचानक हरकत में आई और हथेली फैलाकर माँ की ओर बढ़ी।

'कहाँ चली पम्मी? अपनी जगह से अगर हिली भी तो झोली वाले बाबा को बुलाकर तुम्हें पकड़ा दूँगा।'

बच्ची तनिक दुविधाग्रस्त दिखाई दी। पल भर उसने कुछ सोचा और फिर पिता की आँखों में बेबाक दृष्टि डालते हुए पूछा— 'कहाँ है झोली वाला बाबा?'

'उधर।... अभी इधर आने वाला है।' रवि ने उंगली से इशारा करते हुए बताया।

'आ जाने दो।' बच्चे ने उपेक्षा से सिर हिलाया और पिता के आदेश का उल्लंघन करने हुए सीधे माँ की गोद में जा बैठी। अपनी दोनो कोमल हथेलियों में निशा का चेहरा थामते हुए बोली— 'मम्मी, तुम दुखी मत हो। अभी झोली वाला बाबा इधर आएगा। अपन लोग उससे कहेंगे कि पापा को पकड़ कर ले जाए।'

अब तक खामोशी से सारे घटनाक्रम का जायज़ा लेते सहयात्री अबोध बच्ची की इस बात को सुनकर ठठाकर हँस पड़े। सबकी हँसी से रवि किंचित हत्प्रभ हुआ, फिर अपने होठों पर एक खिसियानी हँसी लाकर उसे भी उनका साथ देना पड़ा।

पल भर बाद भीतरी कुढ़न उसकी ज़बान पर आई— 'तुम बहुत ज़बान चलाना सीख गई हो पम्मी, गलत बात है। बोलो, तुम्हारी पिटाई करूँ?'

बेटी न डरी, न घबराई। उसने निर्भीक भाव से पहले माँ का गाल चूमा, फिर भर्त्सना भरे कंठ से बोली— 'पापा गंदे। ... मम्मी अच्छी।'

एक बार फिर आस-पास के लोगों का अट्टाहास गूँजा। कई गूंगी ज़बानें बात का सूत्र पकड़ कर मुखर हो उठीं—'बच्ची समझदार है जी, सही बात कर रही है।'

'आजकल के बच्चे बहुत तेज़ होते हैं जनाब, उन्हें हम-आप डरा-धमका कर काबू में नहीं ला सकते।'

'और फिर, ये बाल-भगवान हैं जी, बिना किसी लाग-लपेट के सच्चाई इन्हीं के मुँह से तो निकलती है।'

रवि का चेहरा बुझ-सा गया। अपनी सफ़ाई में एक शब्द भी नहीं बोल पाया वह।

उधर रोमांचित निशा को लगा— अरे, फैसला हो भी गया? वादी-प्रतिवादी पक्षों की दलीलों को ध्यानपूर्वक सुनने के बाद न्यायविद् की कलम से लिखा एक ऐसा निष्पक्ष फैसला, जिसे सहज ही व्यापक जन-समर्थन मिल गया है? उसकी आँखें भर आईं —भगवान शायद इसीलिए बेटियों को धरती पर भेजता है ताकि वे गूँगी-बहरी-लाचार मांओं की वाणी और सहारा बन सकें, उनकी जख्मी कलेजों पर मरहम धर सकें।

और निशा ने तनिक झुककर अपनी नन्ही हंसिनी का चेहरा चूम लिया।

सावचेती

विजयदान देथा

एक जंगल में सियार-सियारनी का जोड़ा बसता था। लिपी हुई साफ़-सुथरी खोह। चारेक खेत की दूरी पर निर्मल पानी का पोखर। जंगल में बेर के अनगिनत झाड़-झंखाड़। चुन-चुनकर मीठे बेर खाते। सुख और आनन्द की कोई सीमा नहीं। परस्पर बेहद प्रेम। एक दूसरे की छाया पर जान देते। सियारनी सीता से भी सवाई सतवन्ती। मच्छर-मक्खी तक को शरीर का परस नहीं करने देती। नखरे व नज़ाकत के मारे सियार को चैन नहीं लेने देती। सियारन की आत्मा-प्रशंसा सुन-सुनकर सियार भी हाँकने लगा कि एक बार उसने शेर को पूँछ से फटकार लगायी तो उसने सात कुलाँचें खायीं। आखिर मुँह में तिनका लेने पर ही उसे माफ किया। बाघ तो तनी हुई भौहें देखते ही भाग छूटते हैं। अब इस जंगल का राजा मानो तो वो और बादशाह मानो तो वो। सियार न चाहे तो जंगल का एक पत्ता तक न हिले। एक बार तैश में आकर उसने एक टीले को लात मारी तो वो घरौंदे की तरह बिखर गया। उसकी दहाड़ सुनकर बादल फटने लगते हैं। सियारनी को अपने पति पर बेहद गुमान था।

एक बार आधी रात ढले सियारनी को प्यास लगी तो उसने अपने पति को जगाकर साथ चलने के लिए कहा। सियार झपकी लेते बोला, 'ऊँघ के मारे तो मेरी आँख ही नहीं खुलती। तू अकेली ही जाकर...।'

सियारनी बीच में ही मुँह बनाकर कहने लगी, 'मैं औरत-जात अकेली कहाँ जाऊँ?'

'पर यहाँ तुझे छेड़ने वाला कौन है?'

सियारनी गुमान-भरी अदा से बोली, 'औरत की मर्यादा का तुम मर्दों को क्या पता! मुझे तो हवा और धूप का परस भी नहीं सुहाता। पर बस नहीं चलता।'

सियार नींद में टिप्पे मारते कहने लगा, 'क्यूँ, इसमें बस की क्या बात! मेरा बस तो चलता है। तू कहे तो हवा और धूप को झाड़ियों के काँटों में ऐसा उलझाऊँ कि कयामत तक न सुलझ सके!'

'पर पहले मेरे साथ तो चलो। प्यास के मारे ठीक से बोला भी नहीं जाता।'

सियारनी ने अधिक तंग किया तो आखिर सियार को साथ चलना ही पड़ा। आकाश में पूनम का चाँद दमक रहा था। झाड़ी-झाड़ी पर सुर्ख बेर चमक रहे थे। चाँदनी की गोद में जंगल का कण-कण निश्चिन्त सोया था। सियारनी ने एक बार चाँद की तरफ़ देखा। कितना सुन्दर! कितना सुहाना! लाख सियार भी मिलकर इसके सामने नहीं टिक सकते।

सियार किनारे पर खड़ा रहा। सियारनी थोड़ी आगे बढ़कर आराम से पानी पीने लगी। पानी पीकर मुँह ऊपर उठाने का विचार किया ही था कि उसे चाँद की कुटिलता का भान हुआ। पानी में छिपा हुआ इतनी देर तक उसके होंठों का चुम्बन लेता रहा! यह मर्दों की जात ही कमीनी होती है। कड़ाके की सर्दी का खतरा मोल लेकर भी उसकी खातिर पानी में डुबकी लगायी। इन कलमुँहे मर्दों के मारे कोई सतवन्ती अपना सत रखे तो कैसे रखे?

गुस्से में मुँह घुमाकर पति की ओर देखते कहने लगी, 'यूँ पास खड़े टुकुर-टुकुर क्या देख रहे हो? यह लफ़ंगा चाँद मेरा चुम्बन लेने की हिमाकत कर रहा है। तुम साथ नहीं होते तो यह मेरे साथ ज़बरदस्ती कर बैठता।'

घरवाली की यह बात सुनकर सियार का मुँह गुस्से से तमतमा उठा। दाँत पीसते हुए बोला, 'कौन, यह छछून्दर-सा मरियल चाँद! इसकी यह मजाल! तू कहे तो इसके परखचे उड़ा दूँ।'

इतना कहकर वो शेर की तरह पंजा पटकने लगा। मानो चाँद का इसी पल सफाया कर डालेगा। सियारनी ने एक बाद फिर मुँह ऊँचा करके चाँद की तरफ़ देखा। चाँद भी उसका चेहरा देखने के लिए तड़प रहा था। कितना

आकर्षक! कितना कान्तिमय! पति को टोकते बोली, 'जाने दो इस बदनज़र चण्डाल के पीछे सारी दुनिया तकलीफ़ उठायेगी। बेचारे बाल-गोपाल अँधेरे में ज़्यादा डरेंगे।'

क्रोध में उफनते सियार ने और ज़ोर से पंजा पटका। कहने लगा, 'नहीं, नहीं। तू कहे तो अभी इस चाँद की लुगदी बना दूँ।'

घरवाली पति का हाथ पकड़कर बोली, 'जाने दो, जाने दो। तुम अपने सर नाहक बदनामी क्यूँ लेते हो?'

घरवाली ने बार-बार रोका तो सियार मान गया। नहीं तो दुनिया की बहुत बुरी गत बनती। लौटते समय सियारनी सियार को समझाने लगी कि अपना सत और अपनी सावचेती अपने पास। यह मर्दुआ चाँद तरसता है तो तरसने दो। वह तो रात को अपनी खोह के बाहर मुँह भी नहीं निकालेगी।

सियार निर्लज्ज चाँद पर दाँत पीसते खोह में घुस गया। अपने रूप के गुमान में फूली सियारनी को काफी देर से नींद आयी। सुबह दो घड़ी दिन चढ़े मुश्किल से जगी। आँखें मलते-मलते खोह से बाहर आयी। सूरज उसका रूप निहारने के लिए बेसब्री से तड़प रहा था। यह मर्दों की जात ही भाड़ में झोंकने लायक है। सब एक जैसे। पर पट्ठा है तो बहुत तेजवान। तपधारी। सारी दुनिया को उजास से भरनेवाला। देखें चाँद की तरह यह भी बेशर्म है कि नहीं? प्यास न होते हुए भी वह पति से साथ चलने का आग्रह करने लगी। वह झुँझलाते बोला, 'बावली, दिन को क्या डर? तू निशंक अकेली जा।'

सियारनी हठ करते समझाने लगी कि 'जब चाँद जैसे बड़े-बड़े देवता भी नीयत बिगाड़ लेते हैं, तब किस पर भरोसा किया जाय? औरतों का मन विश्वास करे तो कैसे! अब तो अकेले मरने को भी जी नहीं करता।'

जब सियारनी ने पीछा नहीं छोड़ा तो सियार को बेमन ही साथ जाना पड़ा। सियारनी ने जितनी बार तिरछी नज़र से देखा, उतनी ही बार उसने सूरज को उसका रूप निहारने की खातिर तरसता पाया।

किनारे पहुँचते ही चाँद की तरह कुटिल सूरज भी पानी में डुबकी लगाये साफ़ नज़र आया। परायी स्त्री का शील भ्रष्ट करने में इन मर्दों को जाने क्या हाथ लगता है? सियारनी ने पानी पीने की खातिर मुँह नीचा किया ही था कि झिझककर मुँह घुमाया। पति की तरफ़ देखते हुए कहने लगी, 'जो सोचा था वही हुआ। यह कमीना सूरज तो चाँद से भी अव्वल निकला। दिन के उजाले में भी खुल्लमखुल्ला अन्दर छुपा हुआ है।'

सियार लपककर पास आया। बेहद गुस्से से पूछा, 'कहाँ, कँहा?'

सियारनी डुबकी लगाये हुए सूरज की तरफ़ इशारा करते बोली, 'वो रहा। लम्पट कहीं का!'

अब सियार के गुस्से पर क्या अंकुश? बब्बरशेर की तरह पंजा पटकते बोला, 'तू कहे तो अभी इस मरदूद सूरज को ज़मीन में गाड़ दूँ।

सियारनी ने फिर गम खाया। पति को मना करते बोली, 'जाने दो। अपने स्वार्थ की खातिर सारी दुनिया तकलीफ़ उठायेगी। वह किस तरह अँधेरे में अपना गुज़र-बसर करेगी?'

सियार के कलेजे में आग-सी भड़क उठी। दुगुने जोश से फिर पंजा पटका। दाँत पीसते बोला, 'नहीं, नहीं तू कहे तो अभी इस मर्दुए सूरज को बेर की तरह निगल जाऊँ। मतीरे की खुपरी की तरह खुरच डालूँ।'

सियारनी पति के पैर पकड़कर कहने लगी, 'जाने दो। थोड़ी दया विचारो। दुनिया बद्दुआ देगी। अपने सर बेकार क्यूँ बदनामी लेते हो?'

सियार गुस्से में ज़ोर से बोला, 'बेकार कैसे? ऐसे आवारा को छोड़ने से पाप लगता है। तू देखती जा...।'

'मुझे अब कुछ नहीं देखना। मेरे देखने से दुनिया मिट जायेगी। गम खाओ। अपनी सावचेती अपने पास। तुम ऊपर मुँह करके इस निगोड़े सूरज का ध्यान रखो। तब तक मैं पेट भरकर पानी पी लूँ।

आखिर सियारनी के मना करने पर सियार ने जैसे-तैसे ज़ब्त किया। वो बिना पलक झपकाये, सूरज की तरफ़ एकटक देखता रहा। उसकी ओज का सूरज के मन पर ऐसा डर बैठा कि वो फिर अपनी जगह से हिला तक नहीं!

सियारनी काफी देर तक मज़े से पानी पीती रही और पानी में छिपा सूरज उसके होंठों का चुम्बन लेता रहा। ऐसी प्यास पहले कभी नहीं बुझी।

प्यास लगना और न लगना किसी के बस की बात नहीं है। वह रात को भी कई बार पति को खदेड़कर साथ ले जाती। और सियार मुँह ऊँचा करके चाँद का पूरा-पूरा ध्यान रखता। तत्पश्चात् बारी-बारी चाँद और सूरज के चुम्बनों के लिए अधीर सियारनी मज़े से अपनी प्यास बुझाने लगी, सो बुझाती ही गयी। अपना-अपना सत और अपनी-अपनी सावचेती।

घरवाली

इस्मत चुगताई

जिस दिन मिर्ज़ा की नयी नौकरानी लाजो घर में आयी सारे मुहल्ले में खलबली मच गयी। मेहतर, जो मुश्किल से दो झाड़ू मारकर भागता था, अब ज़मीन छीले फेंकता था। ग्वाला, जो दूध में पानी का छींटा देकर सिर मुँड़ जाया करता था; अब घर से कढ़ा हुआ दूध लाने लगा- ऐसा गाढ़ा कि रबड़ का गुमान होता था।

पता नहीं कि किस अरमान-भरी ने लाजो नाम रखा होगा? लाज और शर्म का तो लाजो की दुनिया में कोई मतलब न था। न जाने कहाँ और किसके पेट से निकली, सड़कों पर रुल कर पली। तेरे-मेरे टुकड़े खाकर इस क़ाबिल हो गयी कि छीन-झपटकर पेट भर सके। जब सयानी हो गयी तो उसका जिस्म उसकी वाहिद दौलत साबित हुआ। जल्दी ही वह तो हम उम्र आवारा लौंडों की सोहबत में ज़िन्दगी के अछूते राज़ जान गयी और बिना नकेल की ऊंटनी बन गयी। मोल-तोल की उसे कतई आदत न थी। कुछ हाथ लग गया तो क्या कहने! नक़द न सही तो उधार ही सही। जो उधार की भी तौफ़ीक़ न हो तो खैरात सही।

"क्यों री, तुझे शर्म नहीं आती?" लोग उससे पूछते।

"आती है!" वह बेहयाई से शरमा जाती।

"एक दिन खट्टा खायेगी!"

लाजो को कब परवाह थी? वह तो खट्टा-मीठा एक सांस में डकार जाने की आदी थी। सूरत बला की मासूम पायी थी। आँखें बिना काजल के कलौंच-भरीं, छोटे-छोटे दाँत, मीठा रंग! क्या फीकत किस्म की बरग़लाने वाली चाल पायी थी कि देखने वालों की ज़बाने रुक जातीं और आँखें बकवास करने लगतीं।

मिर्ज़ा कुँवारे थे। हाथ से रोटियाँ थोपते-थोपते अत्तू हो गये थे। बस छोटी-सी बिसातखाने की एक दुकान थी, जिसे वह जनरल स्टोर कहते थे। घर जाकर शादी कराने की फ़ुरसत नहीं मिलती थी। कभी व्यापार ऐसा मन्दा होता कि दिवाला निकलने की नौबत आ जाती। कभी ऐसी टूटकर बिक्री होती कि सिर उठाने की मोहलत न मिलती; सिर पर सेहरा बँधवाने की तो बात ही कहाँ।

बख़्शी को लाजो एक बस-स्टॉप पर मिली थी। बीवी पूरे दिनों से थी; नौकरानी की ज़रूरत थी। जब बच्चा हो गया तो उसे मारकर निकाल दिया। लाजो तो पिटने और निकलने की आदी थी, मगर बख़्शी को कुछ उसकी लत-सी पड़ गयी थी। अब उसे समुन्दर पार बड़े मार्के की नौकरी मिल गयी थी, इसलिए उसने सोचा कि लाओ भाई, उसे मिर्ज़ा के यहाँ डाल आये। कँजरियों में मिट्टी पलीद कराते हैं, ज़रा यह मुफ़्त का माल भी चख देखें।

"लाहौल विला कूव्वत!... मैं नीच औरतों को घर में डालने का क़ायल नहीं!" मिर्ज़ा बिदक गये।

"अरे मियाँ हटाइए भी, सारा काम-काज करेगी!" बख़्शी ने समझाया।

"नहीं भाई! यह लानत कहाँ मेरे सिर मँढ़े जाते हो, अपने साथ क्यों नहीं ले जाते?"

"मेरा अकेले का टिकट आया है, सारे कुनबे का नहीं।"

इतने में लाजो बावर्चीख़ाने पर धावा बोल चुकी थी। लहँगे को लँगोट की तरह कसे हुए, लम्बा बाँस-जिसके

सिर पर झाड़ू बँधी थी-लिये सारे घर में घुमाती फिर रही थी। बख़्शी ने जब उसे मिर्ज़ा के फ़ैसले की खबर दी तो उसे बिल्कुल नोटिस नहीं लिया। उसने पतीलियाँ मचान पर जमाने को कहा और खुद नल पर पानी लेने चली।

"अगर तू कहे तो वापस घर पहुँचा दूँ।"

"चल दूर हो! तू मेरा ख़सम है जो मैके छोड़ आयेगा? जा अपना रास्ता ले, हम यहाँ से निपट लेंगे।"

बख़्शी ने मोटी-मोटी गालियाँ दीं कि हरामज़ादी अकड़ती काहे पे है। लाजो ने उससे भी तगड़ी गालियाँ दीं कि बख़्शी-जैसे लफ़ंगे को भी पसीना छूट गया।

बख़्शी के जाने के बाद मिर्ज़ा की ऐसी सिट्टी गुम हुई कि वह एकदम भाग लिये मस्जिद में और बैठे सोचते रहे कि बेकार का ख़र्च बढ़ेगा। चोरी अलग करेगी! क्या बला सिर पर आ पड़ी? मग़रिब की नमाज़ के बाद घर लौटे तो दम भरकर रह गये! जैसे बी-अम्माँ मरहूमा वापस तशरीफ़ ले आयी हों। घर चन्दन हो रहा था। पानी पीने का कोरा मटका, जिस पर मँजा हुआ कटोरा झिलमिला रहा था, लालटेन साफ़ जगमगाती।

"मियाँ खाना उतार दूँ?" लाजो ने घाट-घाट का पानी पिया था।

"खाना?"

"तैयार है। गर्म-गर्म रोटी डालती हूँ। अभी आप बैठिए।" बिना जवाब सुने वह रसोईघर में चली गयी।

आलू-पालक की तरकारी, धुली मूँग की दाल-ज़ीरा और प्याज़ से बघारी हुई! बस, अम्माँजी के हाथ से खायी थी। गले में निवाला अटकने लगा।

"पैसे कहाँ से लायी?" उन्होंने पूछा!

"बनिये से सामान उधार ले आयी।"

"मैं तुम्हारी वापसी का किराया दे दूँगा।"

"वापसी?"

"हाँ, मेरी हैसियत नहीं।"

कौन माँगे है तनख्वाह?

"मगर...?"

"ज़्यादा मिर्चें तो नहीं?" लाजो ने फुलका रकाबी में डालते हुए पूछा। गोया बात ख़त्म! जी चाहा कि कह दें, नेकबख़त सिर से पैर तक मिर्चें-ही-मिर्चें लगी हुई हैं, मगर लाजो छपाछप ताज़ा फुलके लाने में लगी हुई थी; जैसे रसोई में कोई बैठा पका-पकाकर दे रहा हो।

"ख़ैर सुबह देखा जायेगा।" मिर्ज़ा सोचकर अपने कमरे में चले गये। उमर में पहली बार एक औरत घर में सो रही थी। न जाने कैसा लग रहा था। थके हुए थे, सो गये।

"ना मियाँ, मैं न जाने की!" उन्होंने जब सुबह को उसके घर जाने की बात छेड़ी, तो लाजो ने अल्टीमेटम दिया।

"मगर...।"

"क्या मेरे हाथ का खाना पसन्द नहीं आया?"

"यह बात नहीं।"

"वह तो सब ठीक है मगर...।"

"तो फिर कौन सज़ा हुई...?" लाजो ने गर्म मिजाज़ में कहा।

पहली ही नज़र में लाजो दिल दे बैठी थी। मिर्ज़ा को नहीं, घर को। बग़ैर मालकिन का घर अपना ही हुआ न! घर मर्द का थोड़े ही होता है। वह तो मेहमान होता है। बख़्शी मुआ तो कीड़ों-भरा कबाब था। अलग कोठा करके रखा था और कोठा भी कम्बख़्त नन्दी कुमार की भैंस का। भैंस तो कभी की खुदा को प्यारी हो चुकी थी, मगर ऐसी बू छोड़ गयी थी कि लाजो की रग-रग में रच गयी थी। ऊपर से नखरे करता था सो अलग। यहाँ घर की रानी तो वही थी।

मिर्ज़ा निरे भोंदू थे, यह लाजो ने देखते ही ताड़ लिया था। वाक़ई मेहमानों की तरह आते, चुपचाप जो आगे रख देती खा लेते। वे पैसे दे जाते और दो-चार बार हिसाब पूछा, फिर इत्मीनान हो गया कि लूटती नहीं। वे सुबह को जाते और शाम को आते।

लाजो दिन-भर घर को सँवारती, आँगन में नहाती। कभी जी चाहता तो पड़ोस में रामू की दादी के पास जा बैठती। रामू मिर्ज़ा के स्टोर में काम करता था। लाजो पर फौरन नर्म हो गया। तेरह-चौदह बरस का होगा। मुँह पर ढेरों मुँहासे। बुरी सोहबत में मिट्‌टी हो गया था। उसी ने बताया कि मिर्ज़ा अक्सर कँजरी के यहाँ जाते हैं।

लाजो को बहुत बुरा लगा। बेकार का खर्चा! डाकिनें होती हैं ये कँजरियाँ! आखिर वह खुद किस मर्ज़ की दवा थी? उसने सोचा। आज तक जहाँ रही, सभी ख़िदमात

खुश-अस्लूबी से सँभाली। लाजो को आये हफ़्ता गुज़र गया था, लेकिन ऐसी बेकद्री उसकी कहीं नहीं हुई। मर्द व औरत के रिश्ते को उसने हमेशा फ़राखदिली से देखा। प्यार ही उसके लिए सबसे हसीन तजुर्बा था। कुछ उमर से उसे इस प्यार से दिलचस्पी पैदा हो गयी थी। न माँ मिली न दादी-नानी, जो ऊँच-नीच समझातीं। इस मामले में लाजो बिल्कुल पड़ोस की बिल्ली थी, जो बिल्लों की मेहरबानी को अपना हक़ समझती थी। इधर-उधर से बहुत पैग़ामात उसे मिल रहे थे, मगर वह मिर्ज़ा की नौकरानी थी; नहीं गयी। उनको टाल दिया कि लोग हँसेंगे मिर्ज़ा पर।

मिर्ज़ा ऊपर से बर्फ़ का तूदा बने बैठे थे, अन्दर बेचारों के ज्वालामुखी दहक रहा था। जान-बूझकर वे घर से कटे-कटे से रहते। अजीब दिल का आलम था। कुछ मुहल्ले के मनचलों की भी उनकी दहशत में हाथ था। जिधर देखा लाजो के चर्चे। आज उसने दूधवाले का मुँह खसोटा, कल पनवाड़ी के थोबड़े पर गोबर उठाकर दे मारा! जिधर भी जाती, लोग हथेली पर दिल लेकर दौड़े पड़ते थे। स्कूल के मास्टरजी गली में मिल जाते तो उसे शिक्षा देने पर उतारू हो जाते। मस्जिद से निकलते हुए मुल्लाजी भी उसके कड़ों की आवाज़ सुनकर बलाओं को भगाने वाली, आयतलकुर्सी पढ़ने लगते।

मिर्ज़ा कुछ चिढ़े हुए से घर में घुसे। लाजो उसी दम नहाकर आयी थी। गीले बाल कन्धों पर पड़े थे। चूल्हा फूँकने की वजह से गाल तमतमा रहे थे। आँखें छलक रही थीं। मियाँ को बेवक़्त आता देखकर उसने दाँत निकोस दिये। मिर्ज़ा बड़बड़ा कर गिरने से बचे। उन्होंने सिर झुकाकर रोटी खायी! फिर जाकर मस्जिद में बैठ गये। मगर दिल घर में पड़ा था। पता नहीं बैठे-बिठाये उन्हें घर क्यों एकदम याद आने लगा था? लौटे तो लाजो दरवाज़े पर खड़ी किसी से झगड़ रही थी। मिर्ज़ा को देखकर वह मटक गया।

"कौन था...?" उन्होंने शक्की शौहर की तरह पूछा।

"रघुवा।"

"रघुवा...?" मिर्ज़ा बरसों से दूध लेते थे, मगर ग्वाले का नाम भी मालूम नहीं था।

"दूध वाला!"

"हुक्का ताज़ा करूँ मियाँ?" लाजो ने बात टाली।

"नहीं। क्या कहता था?"

"पूछता था कितना दूध लाऊँ?"

"फिर तुमने क्या कहा...?"

"मैंने कहा, तेरी अरथी उठे! जितना रोज़ लाता है।"

"फिर?" मिर्ज़ा सुलग गये।

"फिर मैंने कहा, हरामी, अपनी अम्माँ-भैसा को दूध पिला।"

"उल्लू का पट्ठा, बड़ा हरामी है रघुवा! बन्द कर दूध, हम स्टोर से वापसी पर ले आया करेंगे।"

रात को खाना खाने के बाद मिर्ज़ा ने बड़े ठस्से के साथ कलफदार कुर्ता पहना, इतर की फुरेरी कान में अटकाई और छड़ी सँभालकर खँकारते हुए चल दिये। लाजो जल-भुनकर कबाब हो गयी। पतिव्रता की तरह गुमसुम देखती रही और मन-ही-मन में उस कँजरी को कोसती रही। वह मिर्ज़ा को पसन्द नहीं? ऐसा तो कभी नहीं हुआ।

कँजरी अपने दूसरे ग्राहक को निपटा रही थी कि मिर्ज़ा बिगड़कर लाला की दुकान पर जा बैठे। मँहगाई और सियासी उलट-फेर पर जी जलाकर वापस झुँझलाते हुए लौटे तो ग्यारह बज चुके थे। पानी की सुराही सिरहाने रखी हुई थी, मगर ध्यान न गया। बावर्चीखाने वाले दर्रे में एक मटका रखा था, गटगटाकर ठण्डा पानी पिया। मगर जी की आग और भड़क उठी।

लाजो की चिकनी सुनहरी टाँग दरवाज़े की आड़ से झाँक रही थी। बेढंगी-सी करवट पर उसके कड़े खनखनाये। टाँग और पसर गयी। मिर्ज़ा ने एक गिलास और चढ़ाया। वे लाहौल का पाठ करते हुए पलँग पर गिर पड़े।

करवटें ले-लेकर जिस्म छिल गया। पानी पी-पीकर पेट नक्कारा हो गया। दरवाज़े के पीछे से टाँग कुछ और भी अड़ंगे लगाने लगी। अनजाना खौफ़ गला दबोचने लगा। बड़ा ऊधम मचायेगी नामुराद, मगर शैतान ने पीछे से ढकेलना शुरू किया। अपने पलँग से एक दर्रे तक न जाने कितने मील के चक्कर काट चुके थे। अब उनमें दम नहीं था।

एक भोला-भोला-सा ख़याल उनके दिल में सिर उठाने लगा कि अगर लाजो की टाँग इतनी खुली न रहे तो उन्हें

उतनी प्यास न लगे। ख़याल ने जैसे ही फन उठाया, उनकी हिम्मत बढ़ गयी। नामुराद जाग गयी तो न जाने क्या समझेगी? मगर अपने बचाव की ख़ातिर ख़तरा भी तो मोल लेना ही पड़ता है।

जूते पट्‌टी तले छोड़े और दबे पाँव वह साँस रोके आगे बढ़े। चुटकी से लहँगे की गोट पकड़कर खींच दी। दूसरे लम्हे उन्हें पछतावा भी होने लगा कि शायद ग़रीब को गर्मी लग रही हो। थोड़ी देर बग़ैर फैसलाकुन अन्दाज़ में खड़े काँपते रहे, फिर दिल पर पत्थर रखकर वापस मुड़े।

अभी उनके ठिठकते क़दम चौखट तक न पहुँचे थे कि क़यामत टूट पड़ी। एक करवट लगाकर लाजो ने उन्हें जा लिया! मिर्ज़ा की घिग्घी बँध गयी। मिर्ज़ा के साथ ज़िन्दगी में ऐसी बेजा कभी न हुई थी। वह हायँ-हायँ करते रहे और लाजो ने उनकी लाज लूटी ली।

सुबह को मिर्ज़ा लाजो से ऐसे शरमा रहे थे जैसे नयी ब्याही दुल्हन! लाजो सीना-ज़ोर फ़ातेह (विजयिनी) की तरह गुनगुना रही थी और पराँठों में घी की तहें जमा रही थी। उसकी आँखों में रात की बात का कोई अक्स न था। वैसे ही रोज़ना की तरह दहलीज़ पर बैठी मक्खियाँ उड़ाती रही। मिर्ज़ा डर रहे थे कि अब वह उँगली पकड़ पोंचा पकड़ेगी।

दोपहर को जब वह उनके लिए खाना लेकर दुकान पर पहुँची तो उसकी चाल मे अजीब-सा ठुमका था। लाजो को देखकर लोग ख्वाहमख्वाह भी चीज़ों का भाव पूछने आ जाया करते थे। मारे-बाँधे कुछ ख़रीदना भी पड़ जाता था। बग़ैर कहे लाजो फौरन सामान नाप-तोलकर देने लगती। हर चीज़ के साथ ढेरों मुस्कराहटें और नख़रे भी बाँध देती। इतनी-सी देर में वह इतनी बिक्री कर जाती कि मिर्ज़ा से सुबह से शाम तक न हो पाती। आज उन्हें यह बात नागवार गुज़र रही थी।

मगर अब तो जो मिर्ज़ा के सो राजा के नहीं। क्या बोटी चढ़ गयी और रंग निकल आया। लोग वजह जानते थे और मरते थे। मिर्ज़ा की भी दिन-ब-दिन बौखलाहट बढ़ती जा रही थी। जितनी वह उनकी ख़ितमतगुज़ारी करती गयी, वे उसके उतने ही दीवाने होते गये। उनके दिल में दुनिया का ख़ौफ़ बढ़ता गया। उन्हें लाजो की बेतकल्लुफ़ियों का मदहोशकुन तजुर्बा था। परले दर्ज़े की बेहया थी। खाना लाती तो बाज़ार में भूचाल आ जाता। किसी की चुटकी बजती, किसी को ठेंगा दिखाती, कूल्हे मटकाती, गालियाँ झाड़ती हुई आती तो मिर्ज़ा का खून खौल जाता। वे कहते—

"तुम खाना लेकर न आया करो।"

"काहे को?" लाजो का मुँह उतर जाता।

सारे दिन अकेली बैठी बौरा जाती थी। बाज़ार में ज़रा रंग जमता था, हँसी दिल्लगी चलती थी।

जब कभी वह खाना लेकर न आती तो मिर्ज़ा के दिल में तरह-तरह के शुब्हे उठने लगते। न जाने क्या गुल खिला रही होगी, वे सोचते। मिर्ज़ा वक़्त-बेवक़्त जासूसी करने आ धमकते। वह फौरन उनकी थकान उतारते पर आमादा हो जाती। ऐसी फंकैत लौंडिया से ख़ौफ़ न आयेगा?

एक दिन जो यो एकदम घर पहुँचे तो देखा, लाजो रद्‌दी काग़ज़वाले को बेनुक़्त सुना रही है और रद्‌दीवाला दाँत निकोसे शर्बत के-से घूँट गुटक रहा है।

मिर्ज़ा को देखा तो भागा। मिर्ज़ा ने उसी दम लपककर गर्दन नापी और कस-कस के दो झापड़ लगाये, दी एक लात।

"क्या क़िस्सा था?" मिर्ज़ा के नथुने फूले।

"मौतपड़ा दस आने सेर के दे रहा था। मैंने कहा, अपनी माँ को दे जाकर, हरामज़ादे!"

रद्‌दी का खुला भाव आठे सेर का था।

"तुमसे किसने कहा है रद्‌दी बेचने को?" मिर्ज़ा बड़ बड़ाये और पैर खींचकर तस्मे खोलने लगे।

बस उस दिन तो उनके जलाल की इन्तेहा न रही, जब उन्होंने लाजो को गली के लौंडों के साथ कबड्‌डी खेलते देखा। उसका लहँगा हवा में कुलाचें मार रहा था। बच्चे तो कबड्‌डी खेल रहे थे और बच्चों के बाप लहँगे की फ़ैयाज़ी से लुत्फ उठा रहे थे। ये सब बारी-बारी से उसे कोठा दिलाने की पेशकश कर चुके थे, जो लाजो ने ठुकरा दी थी।

मिर्ज़ा निहायत शर्मिन्दगी से सिर झुकाये गुज़र गये। लोग उन पर हँस रहे थे। मियाँजी का गुर्रा तो देखो, जैसे वह उनकी ब्याहता ही तो है।

लाजो उनकी जान को रोग की तरह चिमट गयी थी। उसकी जुदाई के ख़याल से ही उनके पसीने छूटने लगते थे।

स्टोर में तो अब बिल्कुल जी न लगता। सारे वक़्त लाजो का ख़याल सताता कि न जाने कब किसी भारी पेशकश पर नामुराद की राल टपक पड़े।

"मियाँ निकाह क्यों ना पढ़वा लेते?" मिर्ज़ा के दुखड़ा रोने पर मीरन मियाँ ने राय दी।

"लाहौलविला कूव्वत! निकाह जैसी मुकद्दस रस्म को इस बदकार औरत से कैसे वाबिस्ता किया जा सकता है? ज़माने-भरे में लहँगा उछालकर अब वह उनकी दुल्हन कैसे बन सकती है?"

मगर जब शाम को वापसी पर लाजो ग़ायब मिली तो उनके पैरों तले से ज़मीन खिसक गयी। लाला कम्बख़्त बहुत दिनों से सूँघ रहा था। कोई ढँकी-छुपी बात नहीं थी, उसने पुकारकर सबके सामने कहा था कि कोठा नहीं, वह कहे तो बँगला ले देगा। मीरन मियाँ बड़े दोस्त बनते थे, लेकिन चुपके से उन्होंने भी हस्बे-हैसियत नज़राना पेश किया था।

मिर्ज़ा बौखलाये हुए बैठे थे कि लाजो आ गयी। वह रामू की दादी की पीठ मलने गयी थी। उस दिन मिर्ज़ा ने फैसला कर लिया कि ख़ानदान की नाक कटे या सलामत रहे, लाजो को निकाह में लाना पड़ेगा।

"काहे को मियाँ?" लाजो बौखलाकर बोली।

"क्यों? क्या कहीं और दीदे लड़ाने का इरादा है?" मिर्ज़ा बिगड़कर बोले।

"थू... थू... काहे को लड़ाऊँ दीदे!"

"वह राव जी, बँगला दिलाने को कहता है।"

"मैं थूकूँ भी न उसके बँगले पर, जूती मार दी मैंने तो उसके थोबड़े पर।"

"तो फिर...?"

मगर लाजो यह न समझा सकी कि ब्याह करने की क्या ज़रूरत है? वह तो जन्म से उनकी है और उनकी ही रहेगी। फिर ऐसी कौन-सी ख़ता हुई जो मियाँ को निकाह की ज़रूरत महसूस हुई? पर ऐसा मालिक तो न जाने कितने जनम भोगने पर मिलता है। लाजो ने बहुत ठोकरें खायी थीं। मिर्ज़ा उसे फ़रिश्ते मालूम होते थे। उसके सब आशिक़ उसके मालिक बन जाते थे, फिर उसे चार चोट की मार दिया करते थे।

मिर्ज़ा ने कभी उसे फूल की छड़ी भी न छुई और प्यार भी जी-भरकर किया। उसने दो जोड़े बनाकर दिये और सोने की मुँदरियाँ दिलायीं। सच्चे-सोने का ज़ेवर तो उसकी सात पीढ़ी ने न पहना होगा।

उन्होंने रामू की दादी से कहा, तो वह भी हैरत में पड़ गयी।

"ए मियाँ काहे को गले में घण्टी बाँधो, क्या सुसरी नखरे करने लगी है? तो मार दो चुड़ैल को, ठीक हो जायेगी। जहाँ जूतेकारी से काम चल जाय वहाँ निकाह की कहाँ गुंजाइश है?"

मगर मिर्ज़ा को तो एक ही रट लगी थी, अगर मेरी है तो मेरे निकाह में आ जाय।

"क्यों री क्या तुझे धरम की ओट लगे है?"

"ना मैया ऐसी बात ना, मैं तो उन्हें अपना मानती हूँ।"

लाजो बड़ी मीठी तबीयत की थी। वह तो दो घड़ी के ग्राहक को भी दम-भर के लिए पति मानकर उसकी सेवा करती थी। उसने कभी अपने किसी आशिक़ के साथ कंजूसी नहीं की। धन नसीब न हुआ। तन और मन उसने सैंतकर न रखा। जिसे दिया, जी भरकर दिया। लिया भी तो जी भरकर ही था। मिर्ज़ा की तो बात ही निराली थी कि उन्हें देने और उनसे छीनने में जो मज़ा आता था, वह कोई लाजो के दिल से पूछता! उनके सामने सब ढीठ कुत्ते मालूम होते थे। वह अपनी हक़ीक़त जानती थी। शादी-ब्याह तो कुँवारियों के होते हैं और अपने होश में वह कभी कुँवारी थी ही नहीं। वह किसी की दुल्हन बनने के लायक नहीं।

वह बहुत हाथ-पाँव जोड़कर गिड़गिड़ाई, मगर मिर्ज़ा पर निकाह का भूत सवार था। नेक साइत देखकर एक दिन इशा की नमाज़ के बाद निकाह हो ही गया। बस तमाम मुहल्ले-टोले में ऊधम मच गया। लौंडियाँ-बालियाँ ढोलक लेकर सुहाग गाने लग गयीं। कोई दुल्हनवाली बन गयी, कोई दूल्हावाली।

मिर्ज़ा ने हँस-हँसकर नेग दिया और लाजो उर्फ़ कनीज़ फ़ातमा, मिर्ज़ा इरफ़ान बेग के निकाह में आ गयी।

मिर्ज़ा ने लहँगे पर पाबन्दी लगी दी और तंग मोरी का पाजामा-कुर्ता बनवा दिया। कनीज़ फातमा को टाँगों के बीच में खुला की आदत थी। दो अलग-अलग पाँयचे,

जिनमें दो टाँगों के बीच में कपड़ा आ जाये, निरा झंझट है। वह बार-बार उस फिज़ूल रुकावट को खींच जाती। पहली फुर्सत में उसने पाजामा उतार अलगनी पर डाला और लहँगा उठाकर सिर से पहन ही रही थी कि मिर्ज़ा आ गए। उसने लहँगा कमर पर रोकने की बजाय छोड़ दिया।

"लाहौल विला कूव्वत" मिर्ज़ा गरजने लगे और चादर खींचकर उस पर डाल दी। न जाने क्या मिर्ज़ा ने भाषण झाड़ा, उसके कुछ पल्ले न पड़ा कि उसने क्या गलती की है? उसकी इस हरकत पर तो मिर्ज़ा की जान जाया करती थी! अब मिर्ज़ा ने अच्छा-भला लहँगा उठाकर सचमुच चूल्हे में दिया।

मिर्ज़ा भिन-भिन करते चले गये, वह चोर-सी बैठी रह गयी। चादर फेंककर उसने अपने जिस्म का मुआयना किया कि कहीं कोढ़ तो नहीं फूट आया! नल के नीचे नहाती हुई वह बार-बार आँसू पोंछती रही। फिरकीवाले का लौंडा मिठुवा पतंग उड़ाने के बहाने पास की छत पर से उसे नहाते देखा करता था। आज वह ऐसी उदास थी कि न उसे अँगूठा दिखाया और न जूती से धमकाया; न ही भागती हुई कोठे पर गयी, बल्कि चादर लपेट ली।

दिल पर पत्थर रखकर उसने शैतान की आँत जैसी मोरियाँ चढ़ायीं। मरे पर सौ दर्रे, ऊपर से कमरबन्द सटक गया। चिल्ला-चिल्लाकर गला पड़ गया तब बिल्लो आयी और कमरबन्द पड़ा।

यह बन्दूक का गिलाफ़ किस बदमज़ाक ने ईजाद किया होगा, जितनी बार टट्टी जाऊँ, खोलूँ-बाँधूँ।

मिर्ज़ा जब दुकान से लौटे तो फिर कमरबन्द सटक गया था। वह उँगली से पकड़ने की कोशिश कर रही थी। मिर्ज़ा को उस पर प्यार आ गया। चुमकारकर गोद में समेट लिया। बड़ी तिकड़मों से कमरबन्द हाथ में आया। तब उसे पाजामे से उतनी शिकायत न रही।

एक मुसीबत और खड़ी हो गयी। पहले जो लाजो की रानाइयाँ थीं, वह मिर्ज़ा की दुल्हन में बेहयाइयाँ गयीं। ये बाज़ारी औरतों के लटके शरीफज़ादियों पर ज़ेब नहीं देते। वह उनके ख़्वाबों की रिवायती दुल्हन न बन पायी कि मिर्ज़ा प्यार की भीख माँगें। यह शरमाये, वह ज़िद करें। यह बिगड़ जायेगी! वे मनायें, यह रूठ जाय! लाजो तो सड़क का पत्थर थी। सेंजों के फूल बनने के गुर नहीं जानती थी। डाँट-डाँटकर मिर्ज़ा ने लगामें लगायीं। आख़िरकार बँदरिया को सुधार ही लिया।

मिर्ज़ा अब निहायत ही मुतमइन थे कि उन्होंने लाजो को शरीफ़ज़ादी बनाकर ही छोड़ा। यह और बात है कि अब उन्हें घर भागने की ज़्यादा जल्दी नहीं होती। आम शौहरों की तरह यार-दोस्तों में भी उठ-बैठ लेते, कि लोग जोरू का गुलाम न कहें। माशूक के नाज़ उठाना और बात है, मगर बीवी की जूतियाँ मर्द बर्दाश्त नहीं कर सकता।

अपनी गैरहाज़िरियों की तलाफ़ी करने के लिए उन्होंने एक मामा (नौकरानी) रखने की तजवीज पेश की, मगर लाजो की आँखों में खून उतर आया। वह जानती थी कि मियाँ कँजरी के पास जाने लगे हैं। सारे मुहल्ले के मियाँ लोग जाते थे, मगर घर में वह किसी का अमल-दख़ल बर्दाश्त नहीं कर सकती। कोई उसके झमझमाते बर्तनों को हाथ लगाये, उसकी रसोई में क़दम रखे; तो उसकी टाँगें चीरकर फेंक देगी। वह मिर्ज़ा में साझा बर्दाश्त कर सकती थी, मगर घर की वही अकेली मालकिन थी।

फिर मिर्ज़ाजी जैसे लाजो को घर में रखकर भूल गये। हफ़्तों 'हूँ-हाँ' से आगे बात न होती। जब तक वह दाशता थी, सब आँखें सेंकते थे। जब किसी शरीफ के घर बैठ गयी तो मुहल्ले-टोले के उसूलों के तहत माँ, बहिन और बेटी हो गयी। कोई भूलकर भी टाट के पर्दे के पीछे से निगाहें डालने की ज़हमत न करता। सिवा मिठुवा-फिरकीवाले के लौंडे के। वह अब भी वफ़ा निभा रहा था और कोठे पर पतंग उड़ाता। जब मिर्ज़ा चले जाते तो लाजो काम-काज से फारिग़ होकर नल के नीचे नहाने बैठती। पर्दे के ख़याल से ही तो नल लगवाया था। और फिर लाजो ने कोठे की तरफ भी देखना छोड़ दिया था।

उस रात मिर्ज़ा यार दोस्तों के साथ दशहरे के दिन जश्न मनाने ग़ायब रहे थे। सुबह लौटे और जल्दी-जल्दी नहा-धोकर स्टोर चले गये। लाजो तो चढ़ी बैठी थी, बस तभी उसकी कोठे की तरफ चली गयी या शायद मिठुवा की नज़र में भाले लगे हुए थे। बस, उसके गीले जिस्म में घुस गये। लौंडे की बहुत दिन बाद उस दिन पतंग कट गयी। डोर टूटी तो लाजो की पीठ पर घस्सा मारती चली गयी।

लाजो ने सिसकारी भरी और चादर बग़ैर उठकर कोठरी में लपक गयी। एक बिजली-सी कौंधी और सामने की कोठी पर गिरी। फिर उसे ख़याल आया कि नल तो खुला ही छोड़ आयी थी, लिहाज़ा वापस फिर उल्टे पाँव भागी।

इसके बाद जब कभी लाजो हलवाई के यहाँ से कुछ मँगवाने को टाट का पर्दा सरकाती तो मिठुवा आस-पास ही मँडराता नज़र आता।

"ऐ मिठुवे, क्या दिन-भर गोबर का-सा चोथ बना बैठा रहे है? अरे जा ज़रा दो कचौरियाँ तो ला दे। चटनी में खूब सारी मिर्चे डलवाइयो!"

मिठुवा और भी हिल गया। अगर ग़लती से नहाते वक़्त कोठे पर न नज़र आता तो फड़फड़ाके जाग उठता। वह जो प्यार सारी उमर दोनों हाथों से लुटाती आयी थी, मिठुवा के लिए भी हाज़िर था। मिर्ज़ा अगर किसी वक़्त का खाना न खाते तो वह फेंक थोड़े ही देती; किसी ग़रीब हाज़तमन्द को खिला देती थी। मिठुवा से ज़्यादा उसकी इनायत का कौन हाज़तमन्द था?

मिर्ज़ा ने लाजो के पैर में ब्याह की ज़ंजीरें डालकर सोच लिया कि अब हो गयी वह गिरहस्थिन। अपनी आँखों से न देखते तो यक़ीन भी न करते। लाजो ने जो उन्हें यों बेवक़्त चौखट पर खड़े देखा तो बेअख़्तियार हँसी निकल गयी। उसने ख़्वाब में भी न सोचा था कि मिर्ज़ा इस शिद्दत से बुरा मानेंगे। मिठुवा ताड़ गया और धोती उठाकर ऐसा भागा कि तीन गाँव पार करके ही दम लिया।

मिर्ज़ा ने लाजो को इतना मारा कि अगर उसने दुनिया के सर्द व गर्म न झेले होते तो वह अल्लाह को प्यारी हो जाती। उसी वक़्त यह ख़बर सारे गाँव में आग की तरह फैल गयी कि मिर्ज़ा ने अपनी घरवाली को मिठुवा के साथ पकड़ लिया और दोनों को जहन्नुम दाख़िल कर दिया। मिर्ज़ा का मुँह काला हो गया। ख़ानदान की नाक कट गयी। लोग जोक-दर-जोक तमाशा देखने जमा हो गये। मगर यह देखकर उन्हें सख़्त नाउम्मीदी हुई कि मिठुवा तिड़ी हो गया और घरवाली टूट-फूट गयी। 'मगर जी जायेगी, रामू की दादी उसे समेट लेगी।'

कोई सोचेगा कि इतने जूते खाने के बाद लाजो को मिर्ज़ा की सूरत से नफ़रत हो गयी होगी! तौबा कीजिए! जूताकारी से तो असल बन्धन बँधा, जो कि निकाह से भी न बँधा था। वह तो होश में आते ही मिर्ज़ा की ख़ैरियत पूछने लगी। उसके सभी आक़ा देर-सवेर उसके आशिक बन बैठते थे। उस इनायत के बाद तो तनख़्वाह का सवाल ख़त्म हो जाता। मुफ़्त की रगड़ाई ऊपर से। चार चोट की मार! मिर्ज़ा ने आज तक उसे फूल की छड़ी न छुआई थी। दूसरे आका उसे यार-दोस्तों को मँगनी दे देते थे। मिर्ज़ा ने आज तक अपनी चीज़ समझा, उस पर अपना हक़ जाना। यह उसकी इज़्ज़त अफ़जाई थी! हालाँकि इस्तेमाल में नहीं थी, फिर भी उन्हें इतनी प्यारी थी। दर्द पर मिर्ज़ा की टीस ग़ालिब हो गयी सबने उसे समझाया कि जान की अमान चाहती है तो भाग जा, मगर वह न मानी।

मीरन मियाँ मिर्ज़ाजी को रोके हुए थे। बग़ैर नाक-चोटी काट के क़त्ल किये कोई चारा न था। उनकी नाक कट गयी, लाजो ज़िन्दा बच गयी। अब वह दुनिया को कैसे मुँह दिखायेंगे?

"अमाँ एक मालज़ादी की ख़ातिर फाँसी पर चढ़ जाओगे?"

"परवाह नहीं।"

"मियाँ तलाक़ दे दो साली को और छुट्टी।" मीरन मियाँ ने समझाया। "अरे कोई शरीफज़ादी होती तो और बात थी।"

मिर्ज़ा ने उसी वक़्त तलाक दे दी। मुब्लिग बत्तीस रुपये महर और उसक कपड़े-लत्ते रामू की दादी के घर पहुँचवा दिया।

लाजो को जो तलाक़ की ख़बर पहुँची तो जान में जान आ गयी। जैसे सिर से बोझ उतर गया। निकाह तो उसे रास नहीं आया था। यह सब इसी मारे हुआ। चलो पाप कटा!

"मियाँ तो नाराज़ नहीं?" उसने रामू की दादी से पूछा।

"तेरी सूरत ना देखना चाहूँ, कहीं निकल जा यहाँ से मुँह काला करके।" दादी ने कहा।

मिर्ज़ा की तलाक़ की खबर मुहल्ले में सरपट दौड़ गयी तुरन्त लाला ने पैग़ाम भिजवाया—

"बँगला तैयार है।"

"उसमें अपनी अम्माँ को बैठा दे!" लाजो ने कहलवा दिया।

मुब्लिग़ बत्तीस रुपये में से दस उसने बोर्डिंग और लॉजिंग के रामू की दादी को दिये। तंग पाजामे शकूरा की बहू के हाथ औन-पौने बेच लिये। पन्द्रह दिन में लोट-पोटकर खड़ी हो गयी। कम्बख़्त की जैसे धूल झड़ गयी! जूते खाकर और निखर आयी। कमर में सौ-सौ बल पड़ने लगे। पान का बीड़ा लेने या सेव-कचौरी लेने हलवाई की दुकान तक निकल जाती तो गली की चहल-पहल बढ़ जाती। मिर्ज़ा के दिल पर आरे चलते।

एक दिन पनवाड़ी से खड़ी इलायची के दानों पर झगड़ रही थी। वह मज़े ले रहा था। मिर्ज़ा कटे-कटे नज़र बचाकर निकल गये।

"अमाँ तुम्हें तो हो गया है ख़ब्त, अब तुम्हारी बला से, वह कुछ भी करती फिरे! तुमने तो तलाक़ दे दी, तुम्हारा अब उससे क्या रिश्ता?" मीरन मियाँ ने समझाया।

"वह मेरी बीवी थी, मैं कैसे बर्दाश्त कर सकता हूँ?" मिर्ज़ा बिगड़ गये।

"तो क्या हुआ, अब तो नहीं बीवी! और सच पूछो तो वह तुम्हारी थी ही नहीं।"

"और निकाह जो हुआ था।"

"कतई नाजायज़"

"यानी कि...।"

"हुआ ही नहीं बिरादर, न जाने वह किसकी नाजायज़ औलाद होगी! नाजायज़ से निकाह हराम।" मीरन मियाँ ने फ़तवा जड़ा।

"तो निकाह हुआ ही नहीं?"

"कतई नहीं।"

बाद में मुल्लाजी ने साद कर दिया कि हरामी औलाद से निकाह जायज़ नहीं।

"तो गोया हमारी नाक भी नहीं कटी।" मिर्ज़ा मुस्कराये! चलो सिर से बोझ हट गया।

"बिल्कुल नहीं।" मीरन मियाँ ने रोका।

"भाई मेरे, निकाह ही नहीं हुआ तो फिर तलाक़ कैसे हो सकती है।"

"मुब्लिग बत्तीस रुपये महर के मुफ़्त ही में गये।" मिर्ज़ा को अफ़सोस होने लगा।

फ़ौरन यह ख़बर सारे मुहल्ले में छलाँगें मारने लगी कि मिर्ज़ा का उनकी घरवाली से निकाह ही नहीं हुआ, न तलाक़ हुई। मुब्लिग़ बत्तीस रुपये बेशक डूब गये।

लाजो ने जब यह ख़ुशख़बरी सुनी तो नाच उठी। सीने पर से बोझ फिसल गया कि निकाह और तलाक़ एक डरावना ख़्वाब था, जो खत्म हो गया और जान छूटी।

सबसे ज़्यादा ख़ुशी तो इस बात की थी कि मियाँ की नाक नहीं कटी। उसे मियाँ की इज़्ज़त जाने का बड़ा दुख होता। हरामी होना कैसा वक़्त पर काम आया। ख़ुदा-न-ख्वास्ता इस वक़्त वह किसी की जायज़ औलाद होती तो छुट्टी हो जाती।

रामू की दादी के घर में उसका दम घुट रहा था। ज़िन्दगी में कभी यों घर की मालकिन बनकर बैठने का मौक़ा नहीं मिला था। उसे घर की फिकर लगी हुई थी। चोरी-चकारी के डर से मियाँ ने इतने दिन से झाड़ू भी नहीं दिलवायी थी। कूड़े के अम्बार लग रहे होंगे। वह स्टोर जा रहे थे। लाजो ने रास्ता रोक लिया।

"फिर मियाँ, कल से काम पर आ जाऊँ?" वह इठलाई।

"लाहौल विला कूव्वत!" मिर्ज़ा सिर न्यौढ़ाये लम्बे-लम्बे डग मारते निकल गये। दिल में सोचा, कोई मामा तो रखनी ही होगी, यह बदज़ात ही सही। बात साफ़ हो गयी।

लाजो ने कल-वल का इन्तज़ार नहीं किया, छतों-छतों घर में कूद गयी। लहँगे का लँगोट किया और जुट गयी।

शाम को मिर्ज़ा लौटे तो ऐसा लगा कि मरहूमा बी-अम्माँ आ गयी हों। घर साफ़, चन्दन व लोबान की भीनी-भीनी खुशबू, कोरे मटके पर झिलमिलाता मँजा हुआ कटोरा... जी भर आया। चुपचाप भुना हुआ सालन और रोटी खाते रहे। लाजो अपनी हैसियत के मुताबिक़ दहलीज़ पर बैठी पंखा करती रही।

रात को दो टाट के पर्दे मिलाकर जब बावर्चीख़ाने में लेटी तो मिर्ज़ा पर फिर शिद्दत की प्यास का दौरा पड़ा। जी मारे लेटे उसके कड़ों की झनकार सुनते रहे; करवटें बदलते रहे।

जी कह रहा था कि बड़ी बेकद्री की थी उन्होंने उसकी!

"लाहौल विला कूव्वत...." यकायक वह भन्नाये हुए उठे और टाट पर से घरवाली को समेट लिया।

स्त्री का पत्र

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

श्री चरणकमलेषु!

आज पंद्रह वर्ष हो गये अपने विवाह को, मगर अब तक तुम्हें चिट्ठी नहीं लिखी। हमेशा तुम्हारे पास ही पड़ी रही। मुख-ज़बानी अनेक बातें तुम से सुनीं, तुम्हें भी सुनाईं। चिट्ठी-पाती लिखने की दूरी भी तो कहां हुई?

आज मैं आई हूं श्रीक्षेत्र का तीर्थ करने और तुम अपने ऑफिस के काम में जुटे हो। घोंघे के साथ जो संबंध शंख का है, कलकत्ता के साथ तुम्हारा वही नाता है। वह तुम्हारी देह से, तुम्हारे प्राण से जकड़ गया है। इस कारण तुमने छुट्टी की खातिर ऑफिस में दरखास्त नहीं दी। विधाता की यही मंशा थी, उन्होंने मेरी छुट्टी की दरखास्त मंज़ूर कर ली।

मैं तुम्हारे घर की मंझली बहू हूं। आज पंद्रह वर्ष उपरांत इस समुद्र-तट पर खड़ी होकर मैं जान पायी हूं कि जगत और जगदीश्वर के साथ मेरा एक रिश्ता और भी है। इसलिए आज साहस करके यह चिट्ठी लिख रही हूं। इसे फकत मंझली बहू की चिट्ठी मत समझना।

तुम्हारे संग, रिश्ते का लेख जिन्होंने मेरे भाग्य में लिखा था, उन्हें छोड़ कर जब इस संभावना का और किसी को भी आभास नहीं था, उसी ठेठ बचपन में मेरा भाई और मैं एक साथ ही सन्निपात के ज्वर से पीड़ित हुए थे। भाई तो चल बसा, मगर मैं बच गयी। पड़ोस की सब औरतें कहने लगीं, 'मृणाल लड़की है ना, इसलिए बच गयी, लड़का होती तो बच सकती थी भला? चोरी की विद्या में यमराज बड़े निपुण हैं, कीमती चीज़ पर ही उनकी आंख लगी रहती है!

मैं मरने के लिए पैदा नहीं हुई, यही खुलासा करने के लिए चिट्ठी लिखने बैठी हूं।

जिस दिन तुम्हारे दूर के मामा तुम्हारे मित्र नीरद को लेकर लड़की देखने आये, तब मेरी उम्र थी—बारह बरस। उज्जड़ दुर्गम देहात में मेरा घर था, जहां दिन में भी सियार बोलते हैं। स्टेशन से सात कोस बैलगाड़ी में चलने के बाद, डेढ़ कोस का कच्चा रास्ता पालकी से पार करने पर ही हमारे गांव पहुंचा जा सकता था। उस दिन तुम सबको कितनी परेशानी हुई थी! तिस पर हमारे पूर्वी बंगाल का भोजन; जिसका मखौल उड़ाना मामा आज भी नहीं भूलते।

तुम्हारी मां की बस एक ही ज़िद थी कि बड़ी बहू के रूप का अभाव मंझली बहू के द्वारा पूरा करना। नहीं तो भला इतना कष्ट उठा कर तुम लोग हमारे गांव क्यों आते? बंगाल में — तिल्ली, यकृत, अम्लशूल और लड़की के लिए खोज नहीं करती पड़ती। वे स्वयं आ कर दबोच लेते हैं; छुड़ाये नहीं छूटते।

बाबा का हृदय धक-धक करने लगा। मां दुर्गा का नाम जपने लगी। शहर के देवता को गांव का पुजारी कैसे तुष्ट करे? बेटी के रूप का भरोसा था। किन्तु, बेटी के रूप का गुमान कुछ भी मायने नहीं रखता। देखने वाला पारखी जो दाम निर्धारित करे वही उसका मूल्य होता है। अतएव हज़ार रूप-गुण होने पर भी लड़कियों का संकोच नहीं टूटता।

सारे घर का, नहीं-नहीं, समूचे मोहल्ले का वह आतंक मेरी छाती पर पत्थर के समान जम कर बैठ गया। उस दिन आकाश का समस्त आलोक व संसार का संपूर्ण सामर्थ्य, मानो दो परीक्षकों की दो जोड़ी आंखों के सामने, उस बारह वर्षीय अबोध बालिका को पेश करने की खातिर प्यादागिरी कर रहे हों। मुझे कहीं भी छिपने की ठौर नहीं मिली।

संपूर्ण आकाश का रुलाती हुई शहनाई बज उठी। मैं तुम्हारे घर आ पहुंची। मेरे तमाम गुण-दोषों का ब्योरेवार हिसाब लगा कर सभी गृहिणियों को यह मानना पड़ा कि भले कुछ भी हो, मैं सुंदर ज़रूर हूं। यह बात सुनते ही मेरी बड़ी जेठानी का मुंह चढ़ गया। मगर मेरे रूप की ज़रूरत ही क्या थी, बस, यही सोचती हूं? रूप नामक वस्तु को यदि किसी पुरातन पंडित ने गंगामाटी से गढ़ा हो तो उसका आदर-मान भी हो, किन्तु उसे तो विधाता ने केवल

अपनी मौज-मस्ती की रौ में निर्मित किया है। इसलिए तुम्हारे धर्म के संसार में उसका कोई दाम नहीं है।

मैं अनिंद्य रूपवती हूं, इस सच्चाई को भूलने में तुम्हें ज़्यादा वक्त नहीं लगा। मगर मुझ में बुद्धि भी है, यह बात तुम सबको कदम-कदम पर याद रखनी पड़ी। मेरी यह बुद्धि कितनी सहज-स्वाभाविक है कि तुम्हारे घर-परिवार में इतना समय बिताने पर भी वह आज दिन तक टिकी हुई है। मेरी इस बुद्धि के मारे मां बड़ी उद्विग्न रहती थी। नारी के लिए यह तो एक बला है, बला! बाधा वर्जनाओं को मान कर भी जिसे चलना है, यदि वह बुद्धि को मान कर चले तो ठोकर दर ठोकर उसका सर फूटेगा ही। लेकिन मैं क्या करूं, बताओ? तुम्हारे घर की बहू के लिए जितनी बुद्धि अपेक्षित है, उससे बहुत ज़्यादा बुद्धि विधाता ने भूल से दे डाली। अब उसे लौटाऊं भी तो किसको? तुम लोग मुझे पुरखिन कह कर दिन-रात कोसते रहे। कड़ी बातों से ही अक्षम को सांत्वना मिलती है, अतएव वह सब मैंने माफ किया।

मेरी एक बात तुम्हारे घर-परिवार से बाहर थी, जिसे कोई नहीं जानता। मैं छिप कर कविता करती थी। वह कूड़ा-करकट ही क्यों न हो, उस पर तुम्हारे अन्तःपुर की दीवार नहीं उठ सकी। वहीं मुझे मुक्ति मिलती थी। वहीं पर मैं, मैं हो पाती थी। मेरे भीतर मंझली बहू के अलावा जो कुछ भी है, उसे तुम लोगों ने कभी पसंद नहीं किया; पहचान भी नहीं सके। मैं कवि हूं, पंद्रह बरस तक यह भेद तुम्हारी पकड़ में नहीं आया।

तुम्हारे घर की प्रारंभिक स्मृतियों के बीच मेरे मन में जो स्मृति सबसे ज़्यादा कौंध रही है— वह है तुम लोगों की गौशाला। अन्तःपुर के जीने की बगल वाले कोठे में तुम्हारी गायें रहती हैं। सामने के आंगन को छोड़ कर उनके हिलने-डुलने के लिए और कोई जगह नहीं है। उसी आंगन के कोने में उन्हें भूसा डालने के लिए लकड़ी का एक नांद है। अल्ल-सवेरे तरह-तरह के कामों में चाकर उलझे रहते, भूखी गायें तत्क्षण नांद के किनारों को चाट-चाट कर, चबा-चबा कर गड्ढे डाल देती थीं। मेरे प्राण सिहर उठते। मैं थी देहात की लड़की—जिस घड़ी तुम्हारे घर में पहली बार आई, सारे शहर के बीच उस दिन वे ही दो गायें और तीन बछड़े मुझे चिर परिचित आत्मीय-से जान पड़े। जितने दिन नई बहू बन कर रही, खुद न खाकर, लुका-छिपा कर उन्हें खिलाती रही। जब सयानी हुई तो गायों के प्रति मेरी सहज ममता को लक्ष्य करके मेरे साथ हंसी-ठिठोली का रिश्ता रखने वाले, मेरे गौत्र के बारे में संदेह व्यक्त करने लगे।

मेरी बिटिया जन्म के साथ ही चल बसी। जाते समय उसने साथ चलने लिए मुझे भी पुकारा था। यदि वह ज़िन्दा रहती तो मेरे जीवन में जो कुछ महान है, जो कुछ सत्य है, वह सब मुझे ला देती, तब मैं मंझली बहू से एकदम मां बन जाती। एक घर-परिवार के बीच रह कर भी वह पूरे संसार की मां होती है। मुझे मां होने की पीड़ा ही मिलीं, मातृत्व का मुक्ति-वरदान प्राप्त नहीं हुआ।

मुझे याद है, अंग्रेज़ डॉक्टर को अंतःपुर का दृश्य देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ था और जच्चाघर पर तो नज़र पड़ते ही उसने झुंझला कर काफी बुरा-भला कहा था। बाहर सदर में तुम लोगों का छोटा-सा बगीचा है। बैठक में साज-श्रृंगार व असबाब की कोई कमी नहीं, मगर भीतर का भाग मानो ऊन-कढ़ाई की उलटी परत हो। वहां न कोई लज्जा, न कोई श्री और न कोई सजावट। वहां मद्धिम-सी रोशनी जला करती है। हवा चोर की तरह प्रवेश करती है। आंगन का कूड़ा-कचरा हटने का नाम नहीं लेता। फर्श व दीवारों पर समस्त कालिमा अक्षय रूप से विराजमान है। मगर डॉक्टर से एक गलती हो गयी थी। उसने सोचा था कि शायद इससे हमें आठों पहर दुख होता होगा। पर सच्चाई एकदम उलटी है। अनादर नाम की चीज़ राख के समान होती है। शायद भीतर ही भीतर वह आग को छिपाये रहती है, बाहर से ताप को प्रकट नहीं होने देती। जब आत्म-सम्मान कम हो जाता है, तब अनादर भी अन्याय नहीं लगता। उससे वेदना महसूस नहीं होती। तभी तो नारी दुख का अनुभव करने में शर्माती है। इसीलिए मैं कहती हूं, स्त्री-जाति का दुखी होना अवश्यम्भावी है, अगर यही तुम्हारी व्यवस्था है, तो फिर जहां तक संभव हो, उसे अनादर में रखना ही उचित है। आदर से दुःख की व्यथा और बढ़ जाती है।

चाहे जिस तरह रखो, उसमें दुख ही है, इसे याद करने की बात कभी मेरे मन में ही नहीं आयी। जच्चाघर

में जब मौत सिरहाने आकर खड़ी हो गयी थी, तब भी मुझे डर नहीं लगा। हमारा जीवन ही क्या है, जो मौत से डरना पड़े। आदर और यत्न से जिनके प्राण कसकर बंधे रहते हैं, उन्हें ही मरने में झिझक होती है। यदि उस दिन यमराज मुझे खींचते तो मैं उसी तरह उखड़ जाती, जिस तरह पोली ज़मीन से गुच्छों सहित घास सहज ही उखड़ आती है। बंगाल की बेटी तो बात-बात में मरने को आमादा रहती है। किन्तु, इस तरह मरने में क्या बहादुरी है? हमारे लिए मरना इतना आसान है कि मरते लज्जा आती है।

मेरी बिटिया तो सांध्य-तारे की नाईं क्षण भर के लिए उदित होकर अस्त हो गई। मैं फिर से अपने नित्य-कर्म और गाय-बछड़ों में खो गयीं। और इसी ढर्रे में मेरा जीवन जैसे-तैसे निःशेष हो जाता, आज तुम्हें यह चिट्ठी लिखने की दरकार ही नहीं होती। किन्तु, कभी-कभार हवा एक सामान्य-सा बीज उड़ा कर ले आती है और पक्के दालान में पीपल का अंकुर फूट उठता है; और अंत में उसी से काठ-पत्थर की छाती विदीर्ण हो जाती है। मेरे घर-संसार के माकूल बंदोबस्त में भी जीवन का एक छोटा-सा कण न जाने कहां से उड़ कर आन पड़ा कि तभी से दरार पड़नी शुरू हो गयी।

विधवा मां की मृत्यु के बाद मेरी बड़ी जेठानी की बहन बिन्दु ने जिस दिन अपने चचेरे भाइयों के अत्याचार से तंग आकर हमारे घर में अपनी दीदी का आश्रय लिया, तब तुम लोगों ने सोचा कि यह कहां की आफत आ पड़ी। आग लगे मेरे स्वभाव को, क्या करती बोलो— जब देखा तुम सभी मन ही मन विरक्त हो उठे, तब उस निराश्रिता लड़की के लिए मेरा समूचा मन कमर बांध कर उद्यत हो उठा। पराये घर में, पराये लोगों की अनिच्छा के बावजूद आश्रय लेना—यह कितना बड़ा अपमान है! जिसे विवश होकर यह अपमान भी मंज़ूर करना पड़े, क्या एक कोने में ठेलकर उसकी उपेक्षा की जा सकती है?

तत्पश्चात् मैंने अपनी बड़ी जेठानी की दशा देखी। उन्होंने नितांत द्रवित होकर असहाय बहन को अपने पास बुलाया था। किन्तु, जब स्वामी की अनिच्छा का आभास हुआ, तब वे दिखावा करने लगीं जैसे कोई अचीती बला आ पड़ी हो। जस-तस दूर हो जाय तो जान बचे। अपनी अनाथ बहन के प्रति खुले मन से स्नेह प्रदर्शित कर सकें, उनमें इतना साहस नहीं था। वे पतिव्रता जो थीं! उनका यह संकेत देख कर मेरा मन और भी व्यथित हो उठा। मैंने देखा, बड़ी जेठानी ने विशेष तौर से सबको दिखा-दिखा कर बिन्दु के खाने-पहनने की ऐसी भौंडी व्यवस्था की और उसे घर में सर्वत्र दासी-वृत्ति के काम इस तरह सौंप दिये कि मुझे केवल दुख ही नहीं घोर लज्जा भी हुई। वे सबके सामने यह प्रमाणित करने में लगी रहती थीं कि हमारे घरवालों को बिन्दु झांसे में आकर बहुत ही सस्ते दामों में हाथ लग गयी है। न जाने कितना काम करती है और खर्च के हिसाब से बिल्कुल सस्ती।

बड़ी जेठानी के पितृ-वंश में कुल के अलावा कुछ भी बड़ी बात नहीं थी। रूप भी नहीं था। धन भी नहीं था। मेरे श्वसुर के पांव पड़ने पर, किस तरह तुम लोगों के घर में उनका ब्याह हुआ था, यह सब तो जानते ही हो। उनके विवाह से इस वंश में भारी अपराध हुआ है, वे हमेशा यही सोचा करती थीं। इसलिए यथासंभव अपने-आपको सब बातों से अलग रख कर वे तुम्हारे घर में निहायत अकिंचन होकर रहने लगी थीं।

किन्तु, उनके इस साधु-दृष्टांत से मैं बड़ी मुश्किल में पड़ जाती थी। मैं किसी भी तरह अपने-आपको इतना छोटा नहीं बना पाती थी। मैं जिस बात को अच्छा समझती हूं, उसे किसी और की खातिर बुरा मानना, मुझे उचित नहीं जान पड़ता, जिसके बहुतेरे प्रमाण तुम्हे मिल चुके हैं।

बिन्दु को मैं अपने कमरे में खींच लायी। दीदी कहने लगीं, 'मंझली बहू गरीब घर की बेटी का माथा खराब करने लगी है।' वे सबके पास जाकर हरदम इस ढंग से मेरी शिकायत करती रहतीं, जैसे कोई विषम कहर ढा दिया। किन्तु, मैं अच्छी तरह जानती हूं कि अपने बचाव से वे मन की मन ही संतुष्ट थीं। अब सारा दोष मेरे मत्थे आ पड़ा। अपनी बहन के प्रति वे स्वयं जो स्नेह प्रकट नहीं कर सकती थीं, मेरे द्वारा वह स्नेह चरितार्थ होने पर उनका मन हलका होने लगा। मेरी बड़ी जेठानी बिन्दु की आयु से दो-एक बरस बाद देने की चेष्टा किया करती थीं। किन्तु, उसकी उम्र चौदह साल से कम नहीं थी, यदि एकांत में उनसे कहा जाता तो यह कोई असंगत बात

नहीं होती। तुम तो जानते ही हो, वह देखने में इतनी भद्दी है कि फर्श पर गिरने से उसका सर फूट जाय तो लोगों को फर्श की ही चिन्ता होगी। यही कारण है कि माता-पिता के अभाव में कोई ऐसा न था, जिसे उसके ब्याह की फिक्र हो और ऐसे लोग भी कितने हैं, जिनके सीने में यह दम हो कि उससे ब्याह रचाएं।

बिन्दु बहुत डरती-सहमती मेरे पास आयी। जैसे मेरी देह उससे छू जाय तो मैं सहन नहीं कर पाऊंगी। विश्व-संसार में जन्म लेने के निमित्त मानो उसकी कोई शर्त ही न हो। इसीलिए ऐसा एक भी कोना नहीं छोड़ना चाहते थे, जिससे वह अनावश्यक जिन्स की तरह पड़ी रह सके। अनावश्यक कूड़े-कचरे को घर के आस-पास अनायास ही स्थान मिल जाता है, क्योंकि मनुष्य उसे अनदेखा कर जाता है, किन्तु अनावश्यक लड़की एक तो अनावश्यक होती है और उसे भूल पाना भी कठिन होता है। इसी कारण उसे घूरे पर भी स्थान नहीं मिलता। फिर भी यह करने की रंचमात्र भी गुजांइश नहीं है कि उसके चचेरे भाई ही संसार में परमावश्यक पदार्थ हैं। किन्तु वे लोग हैं बड़े मज़े में।

इसलिए, जब मैं बिन्दु को अपने कमरे में लायी तो उसकी छाती धक-धक करने लगी। उसे भयभीत देख कर मुझे बड़ा दुख हुआ। मेरे कमरे में उसके लिए थोड़ी-सी जगह है, यह बात मैंने उसे बड़े लाड़-प्यार से समझायी।

किन्तु, मेरा कमरा फकत मेरा ही तो कमरा नहीं था। इसलिए मेरा काम सरल नहीं हुआ। दो-चार दिन मेरे साथ रहने पर ही उसके शरीर में लाल-लाल न जाने क्या उभर आया? शायद अम्हौरी या ऐसी ही कुछ बीमारी होगी। तुमने कहा बसंत। क्यों न हो, वह बिन्दु थी न? तुम्हारे मोहल्ले के एक अनाड़ी डॉक्टर ने कहा कि दो-एक दिन और पड़ताल किये बिना ठीक से कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु, दो-एक दिन का सब्र किसे होता? बिन्दु तो अपनी बीमारी की लज्जा से ही मरी जा रही थी। मैंने कहा, बसंत है तो है, मैं उसके साथ अपने जच्चाघर में रहूंगी; किसी को कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं। इस बात पर तुम सभी भड़क कर मेरे लिए संहार की प्रतिमूर्ति बन गये, यही नहीं, जब बिन्दु की दीदी भी छद्‌म विरक्त भाव से उस हतभागी लड़की को अस्पताल भेजने का प्रस्ताव करने लगीं, तभी उसके शरीर पर से तमाम लाल-लाल दाग विलुप्त हो गये। पर मैंने देखा!— तुम सब तो और अधिक व्यग्र हो उठे। कहने लगे अब तो निश्चित रूप से बंसत बैठ गयी है। क्यों न हो, वह बिन्दु थी न?

अनादृत पालन-पोषण का एक बड़ा गुण है कि वह शरीर को एकदम अजर-अमर कर देता है। बीमारी आस-पास फटक ही नहीं पाती। मरने के रास्ते बिल्कुल बन्द हो जाते हैं। रोग उसके साथ मखौल कर गया, उसे कुछ भी नहीं हुआ। लेकिन यह बात अच्छी तरह समझ में आ गयीं कि संसार मे असहाय व्यक्ति को आश्रय देना ही सबसे कठिन है। जिसे आश्रय की दरकार जितनी अधिक होती है, आश्रय की बाधाएं भी उसके लिए ही विषम बन जाती हैं।

बिन्दु के मन से जब मेरा भय मिट गया तब उसे और दुष्ट-ग्रह ने दबोच लिया। वह मुझे ऐसी मूर्ति तो इस मायवी-संसार में कभी नज़र नहीं आयी। पुस्तकों में पढ़ा अवश्य था, वह भी स्त्री-पुरुष के बीच ही। बहुत दिनों से ऐसी कोई घटना नहीं हुई कि मुझे अपने रूप का खयाल आता। अब इतने दिन बाद यह कुरूप लड़की मेरे उसी रूप पर बौरा गयी। आठों पहर मेरा मुंह निहारने पर भी उसके नयनों की आस कभी बुझ ही नहीं पाती थी। कहती, दीदी, तुम्हारी यह सलौनी सूरत मेरे अलावा किसे भी नज़र नहीं आयी।' जिस दिन मैं स्वयं अपना जूड़ा बांध लेती, उस दिन वह बहुत रूठ जाती। मेरी केश-राशि को अपने दोनों हाथों में झुलाने मात्र से उसके आनन्द की सीमा नहीं रहती। किसी दावत में जाने के अलावा मुझे साथ-शृंगार की ज़रूरत ही नहीं पड़ती थी। लेकिन बिन्दु मुझे तंग कर-करके हमेशा थोड़ा-बहुत सजाती रहती। सचमुच, वह लड़की मेरे पीछे पागल हो गयी थी।

तुम्हारे घर के भीतर हिस्से में कहीं खाली ज़मीन नहीं थी। उत्तर दिशा की दिवार में नाली के किनारे न जाने कैसे एक गाब का पौधा उग आया? जिस दिन देखती कि उस गाब के पौधे में नयी लाल-लाल कोंपले निकल आयी हैं, उसी दिन जान पड़ता कि धरती पर वास्तव में बसंत आ गया है। और जिस दिन मेरी घर-गृहस्थी में इस अनादृत लड़की के चित्त का ओर-छोर इस तरह रंगीन हो उठा, उस दिन मैंने जाना कि हृदय के जगत में भी बसंत की बयार बहती है— वह किसी स्वर्ग-लोक से आती है, गली के मोड़ से नहीं।

बिन्दु की प्रीत के दुःसह वेग ने मुझे अस्थिर का डाला था। मानती हूं कि मुझे कभी-कभार उस पर गुस्सा आ

जाता। किन्तु, उस प्रीत की भव्य अनुभूति में मुझे अपने स्वरूप की ऐसी छवि दिखलायी पड़ी जो पहले कभी नज़र नहीं आयी। वह मेरा मुक्त स्वरूप है। मुक्त छवि है।

इधर मैं बिन्दु जैसी लड़की को इतना लाड़-दुलार कर रही हूं, यह तुम लोगों को बड़ी ज़्यादती लगी। उस नुक्ताचीनी व खटपट को कोई अंत नहीं था। जिस दिन मेरे कमरे से बाजूबंद की चोरी हुई, उस दिन इस बात का आभास देते हुए तुम लोगों को तनिक भी लज्जा नहीं आयी कि उस चोरी में किसी न किसी तरह बिन्दु का हाथ है। जब स्वदेशी आन्दोलन में लोगों के घर की तलाशियां होने लगीं, तब तुम लोग अनायास ही यह संदेह कर बैठे कि बिन्दु पुलिस द्वारा रखी गयी स्त्री-गुप्तचर है। उसका और तो कोई प्रमाण नहीं था, प्रमाण केवल यही था कि वह बिन्दु थी!

तुम्हारे घर की दासियां उसका कोई भी काम करने से मना कर देती थीं। उनमें से किसी भी दासी को मैं उसके काम की फरमाइश करती, तब भी वह लड़की संकोच के मारे एकदम जड़वत् हो जाती थी। इन्हीं सब कारणों से उस पर मेरा खर्च दिन-ब-दिन बढ़ता गया। मैंने खासतौर से एक अलग दासी रख ली। यह भी तुम लोगों को गवारा नहीं हुआ। बिन्दु को पहनने के लिए जो कपड़े देती थी, उन्हें देख कर तुम इतने नाराज़ हुए मेरा हाथ-खर्च की बंद कर दिया। दूसरे ही दिन मैंने सवा रुपये जोड़े की मिल की गाढ़ी व कोरी धोती पहननी शुरू कर दी। और जब मोती की माँ मेरी झूठी थाली उठाने के लिए आयी तो मैंने उसे मना कर दिया। मैंने खुद जूठा भात बछड़े को खिलाया और आंगन के नल पर बासन मांजे। एक दिन अकस्मात् इस दृश्य को देख कर तुम खुश नहीं हुए। मेरी खुशी के बिना तो चल सकता है, पर तुम्हारी खुशी के बिना नहीं चल सकता, यह सुबुद्धि आज दिन तक मेरे भेजे में नहीं आयीं।

इधर ज्यों-ज्यों तुम लोगों का रोष बढ़ता जा रहा था, त्यों-त्यों बिन्दु की उम्र भी बढ़ती जा रही थी। इस स्वाभाविक बात पर तुम लोग अस्वाभाविक रूप से विभ्रत हो उठे थे। एक बात याद करके मुझे आश्चर्य होता रहा है कि तुम लोगों ने बिन्दु को ज़बरदस्ती अपने घर से खदेड़ क्यों नहीं दिया? मैं खूब जानती हूं कि तुम लोग मन ही मन मुझसे डरते थे। विधाता ने मुझे बुद्धि दी है, भीतर इस बात की तवज्जो दिये बिना तुम लोगों से रहा नहीं जाता था।

अंत में अपनी शक्ति से बिन्दु को विदा करने में असमर्थ होकर तुम लोगों ने प्रजापति देवता की शरण ली। बिन्दु का वर ठीक हुआ। बड़ी जेठानी बोलीं, 'जान बची, मां काली ने अपने वंश की लाज रख ली।'

वह कैसा था, मैं नहीं जानती। तुम लोगों से ही सुना कि सब तरह से अच्छा है। बिन्दु मेरे पांवों से लिपट कर रोने लगी। 'दीदी, मेरा ब्याह क्यों कर रही हो भला?'

मैंने उसे समझाते-बुझाते कहा, 'बिन्दु, डर मत, सुना कि तेरा वर अच्छा है।'

बिन्दु बोली, 'अगर वर अच्छा है तो मुझ में भला ऐसा क्या है, जो उसे पसंद आ सके।'

वर-पक्ष वालों ने तो बिन्दु को देखने तक की इच्छा ज़ाहिर नहीं की। बड़ी दीदी इससे बड़ी आश्वस्त हुई।

लेकिन बिन्दु रात-दिन रोती रहती। चुप होने का नाम ही नहीं लेती। उसे क्या कष्ट है, मैं जानती थी। बिन्दु के लिए मैंने घर में बहुत बार झगड़ा किया था, लेकिन उसका ब्याह रुक जाय, यह बात कहने का साहस नहीं होता था। कहती भी किसी बूते पर? यदि मैं मर जाऊं तो इसकी क्या गति होगी?

एक तो लड़की, तिस पर काली-कुरूप लड़की—किसके घर जा रही है? वहां उसकी क्या दशा होगी? इन बातों की चिन्ता न करना ही उचित है। सोचती तो प्राण सिहर-सिहर उठते।

बिन्दु ने कहा, 'दीदी, ब्याह के अभी पांच दिन और हैं। इस बीच क्या मुझे मौत नहीं आयेगी?'

मैंने उसे खूब धमकाया। किन्तु अन्तर्यामी जानते हैं, यदि स्वाभाविक ढंग से बिन्दु की मृत्यु हो जाती तो मैं राहत की सांस लेती।

विवाह के एक दिन पहले बिन्दु ने अपनी दीदी के पास जाकर कहा, 'दीदी, मैं गौशाला में पड़ी रहूंगी, जो कहोगे वही करूंगी। तुम्हारे पांव पड़ती हूं, मुझे इस तरह मत धकेलो।

कुछ दिनों से दीदी की आंखों में चोरी-चोरी आंसू झर रहे थे, उस दिन भी झरने लगे। किन्तु, सिर्फ़ हृदय ही तो नहीं होता, शास्त्र भी तो उन्होंने कहा, 'बिंदी, तू क्या जानती नहीं कि पति ही सब-कुछ है—स्त्री की गति स्त्री की मुक्ति। भाग्य में यदि दुख बदा है तो उसे कोई मिटा नहीं सकता।'

असली बात तो यह है कि कहीं कोई रास्ता नहीं था। बिन्दु को ब्याह तो करना ही पड़ेगा। फिर जो हो सो हो।

मैं चाहती थी कि विवाह हमारे घर से हो। किन्तु, तुम लोग कह बैठे, वर के ही घर में हो, उनके कुल की यही प्रथा है।

मैं समझ गयी, बिन्दु के विवाह में यदि तुम लोगों को खर्च करना पड़े तो तुम्हारे गृह-देवता उसे किसी भांति सह नहीं सकेंगे। इसलिए चुप रह जाना पड़ा। किन्तु एक बात तुम में से कोई नहीं जानता। दीदी को बताने की इच्छा थी, मगर बताई नहीं, वरना वे डर के मारे मर जातीं। मैंने अपने थोड़े-बहुत गहने लेकर चुपचाप बिन्दु का साज-सिंगार कर दिया। सोचा, शायद दीदी की नज़र में पड़ा होगा। किन्तु, उन्होंने जैसे देख कर भी नहीं देखा। दुहाई है धर्म की, इसके लिए तुम उन्हें क्षमा कर देना।

जाने से पहले बिन्दु मुझसे लिपट कर बोली, 'दीदी तो क्या तुम लोगों ने मुझे एकदम ही त्याग दिया।'

मैंने कहा, 'ना बिन्दु, तुम चाहे जैसी स्थिति में रहो, मैं तुम्हें प्राण रहते नहीं त्याग सकती।'

तीन दिन बीते। तुम्हारे ताल्लुके की प्रजा ने, खाने के लिए तुम्हें जो भेड़ा दिया था, उसे तुम्हारी जठराग्नि से बचाकर मैंने कोयले की, नीचे वाली कोठरी के एक कोने में बांध दिया था। अल्ल-सवेरे ही मैं खुद जाकर उसे दाना-पानी दे आती। तुम्हारे चाकरों पर दो-एक दिन तो ऐतबार किया, मगर उसे खिलाने की बजाय, उसी को खा जाने की ललक उनमें ज़्यादा थी।

उस दिन सवेरे कोठरी में गयी तो देखा, बिन्दु एक कोने में दुहरी होकर बैठी है। मुझे देखते ही मेरे पांवों में गिर कर चुपचाप रोने लगी।

बिन्दु का पति पागल था!

'सच कह रही है, बिन्दी?'

'इतना बड़ा झूठ तुम्हारे सामने बोल सकती हूं, दीदी? वे पागल हैं। ससुर की राय नहीं थी, इस विवाह के लिए—किन्तु वे मेरी सास से यमराज की तरह डरते हैं। ब्याह के पहले ही वे काशी चले गये। सास ने हठपूर्वक अपने लड़के ब्याह कर दिया।'

मैं वहीं कोयले की ढेरी पर बैठ गयी। औरत को औरत पर दया नहीं आती। सास कहती है, यह लड़की थोड़े ही है। लड़का पागल है तो क्या हुआ? है तो पुरुष ही।'

बिन्दु का पति पहली नज़र में ठीक पागल जैसा नहीं लगता। किन्तु, कभी-कभार उस पर उन्माद सवार हो जाता कि ताला लगा कर उसे कमरे में रखना पड़ता। विवाह की रात वह ठीक था, किन्तु रात भर जगने व अन्य झंझटों के फलस्वरूप दूसरे ही दिन से उसका माथा बिल्कुल खराब हो गया। बिन्दु दोपहर को पीतल की थाली में भात खाने बैठी थी। सहसा उसके पति ने भात-सहित थाली उठा कर फेंक दी। हठात् न जाने क्यों उसे महसूस हुआ कि बिन्दु स्वयं रानी रासमणि है। नौकर ने निश्चय ही सोने का थाल चुरा कर रानी को अपने ही थाल में भात परोसा है। यही उसके क्रोध का कारण था। बिन्दु तो डर के मारे मरी जा रही थी। तीसरी रात जब सास ने उसे पति के कमरे मे सोने के लिए कहा तो बिन्दु के प्राण सूख गये। सास को क्रोध आने पर कुछ भी होश नहीं रहता था। वह भी पागल थी, किन्तु पुरी तरह नहीं, इसलिए वह ज़्यादा घातक थी। बिन्दु को कमरे में जाना ही पड़ा। उस रात स्वामी काफी शांत रहा। किन्तु प्रच्छन्न आतंक से बिन्दु का शरीर काठ-सा हो गया। स्वामी जब बहुत रात ढलने पर सो गया तो वह किस कौशल से भाग कर चली आयी इसका विस्तृत विवरण लिखने की ज़रूरत नहीं है।

घृणा व क्रोध के मारे मेरा समूचा शरीर जलने लगा। मैंने कहा, 'ऐसे धोखे का ब्याह, ब्याह ही नहीं है। बिन्दु तू जैसे रहती थी, वैसे ही मेरे पास रह। देखूं तुझे कौन ले जाता है?'

तुम लोगों ने उज्र किया, 'बिन्दु झूठ बोलती है।'

मैंने कहा, 'उसने कुछ भी झूठ नहीं बताया।'

तुम लोगों ने पूछा, 'तुम्हें क्योंकर पता चला?'

मैंने कहा, 'मैं अच्छी तरह जानती हूं।'

तुम लोगों ने भय दिखाया, 'बिन्दु के ससुराल वालों ने पुलिस को रपट कर दी तो मुश्किल में पड़ जायेंगे।'

मेरा जवाब था, 'क्या अदालत इस पर गौर नहीं करेगी कि धोखे से पागल व्यक्ति के साथ उसका ब्याह किया है।'

तुमने कहा, 'तो क्या इसके लिए कोर्ट-कचहरी जायेंगे? क्यों, हमें क्या पड़ी है?'

मैंने कहा, 'अपने गहने बेचकर, जो बन पड़ेगा, करूंगी।'

तुमने कहा, 'वकील के घर चक्कर काटोगी?'

भला इसका क्या जवाब देती? सर पीटने के अलावा दूसरा चारा ही क्या था?

उधर बिन्दु की ससुराल से आकर उसके जेठ ने बाहर बड़ा हंगामा कर दिया। थाने में रपट करने की बार-बार धमकी देने लगा।

मुझे में क्या शक्ति थी, नहीं जानती—किन्तु, कसाई के हाथ से गाय प्राण छुड़ा कर मेरे आश्रय में आयी है, उसे पुलिस के डर से फिर कसाई के हवाले कर दूं, मेरा मन किसी भी तरह यह बात मानने के लिए तैयार नहीं था। मैंने चुनौती स्वीकार करते कहा, 'करने दो थाने में खबर।'

इतना कह कर मैंने सोचा कि इसी वक्त बिन्दु को अपने सोने के कमरे में ले जाकर भीतर से ताला जड़ दूं। मैंने सब जगह तलाश की, बिन्दु का कहीं पता नहीं चला। तुम लोगों के साथ जब मेरी बहस चली रही थी, तब बिन्दु ने स्वयं बाहर जाकर जेठ के आगे आत्म-समर्पण कर दिया था। वह समझ गयीं, यदि उसने घर नहीं छोड़ा तो मैं संकट में पड़ जाऊंगी।

बीच में भाग आने से बिन्दु ने अपना दुख और बढ़ा लिया। तर्क यह था कि उसका लड़का उसे खाये तो नहीं जा रहा था। अयोग्य पति के दृष्टांत दुनिया में दुर्लभ नहीं हैं। उसकी तुलना में तो उसका बेटा सोने का चांद है।

बड़ी जेठानी ने कहा, 'जिसकी किस्मत ही खराब हो, उसके लिए दुख करना व्यर्थ है। पागल-वागल कुछ भी हो है तो स्वामी ही न!'

एक स्त्री अपने कोढ़ी-पति को कंधों पर बिठाकर वेश्या के घर ले गयी थी, सती-साध्वी का वह दृष्टांत तुम सबके मन में मचल रहा था। दुनिया के इतिहास मे कायरता के उस शर्मनाक आख्यान का प्रचार करते हुए तुम लोगों के पौरुष को रंगमात्र भी संकोच नहीं हुआ। इसलिए मानव-जन्म पाकर भी बिन्दु के व्यवहार पर तुम लोग क्रोध कर सके, तुम्हारा सर नहीं झुका। बिन्दु के लिए मेरी छाती फटी जा रही थी, किन्तु तुम लोगों के लिए मेरी लज्जा का अंत नहीं था। मैं तो गांव की लड़की हूं, तिस पर तुम लोगों के घर आ पड़ी; फिर भगवान ने न मालूम किस तरह मुझे ऐसी बुद्धि दे डाली। तुम लोगों की ये सब नीति-कथाएं मेरे लिए नितांत असह्य थीं।

मैं निश्चय-पूर्वक जानती थी कि बिन्दु मर भले ही जाय, अब हमारे घर नहीं आयेगी। किन्तु, मैं तो उसे ब्याह के एक दिन पहले दिलासा दे चुकी थी कि प्राण रहते उसे छोड़ूंगी नहीं। मेरा छोटा भाई शरत् कलकत्ता के एक कॉलेज में पढ़ रहा था। तुम तो जानते ही हो कि तरह-तरह की वालंटियरी करना, प्लेग वाले मोहल्लों में चूहे मारना, दामोदर में बाढ़ आने की खबर सुनकर दौड़ पड़ना— इन सब बातों में उसका इतना उत्साह था कि एफ.ए. की परीक्षा में लगातार दो मर्तबा फेल होने पर भी उसके जोश में कोई कमी नहीं आयी। मैंने उसे बुला कर कहा, 'जैसे भी हो, बिन्दु की खबर पाने का बन्दोबस्त तुझे करना ही पड़ेगा, शरत! मुझे चिट्ठी लिखने का बिन्दु साहस नहीं जुटा पायेगी। लिखने पर भी मुझे मिल नहीं सकेगी।'

इस काम की बजाय यदि मैं उसे डाका डाल कर बिन्दु को लाने की बात कहती या उसके पागल पति का सर फोड़ने का आदेश करती तो उसे ज़्यादा खुशी होती।

शरत् के साथ बातचीत कर रही थी कि तुमने कमरे में आते ही पूछा, 'फिर यह क्या हंगामा कर रही हो?'

मैंने कहा, 'वही जो शुरू से करती आयी हूं। यह हंगामा तो तभी से चालू है जब से तुम्हारे घर आयी हूं— किन्तु इस श्रेय तो तुम्हीं लोगों को है।'

तुमने जिज्ञासा की, 'बिन्दु को लेकर फिर कहीं छिपा रखा है क्या?'

मैंने कहा, 'बिन्दु आती तो उसे ज़रूर छिपा कर रख लेती। किन्तु, वह अब आयेगी नहीं, तुम निश्चित रहो।'

शरत् को मेरे पास देख कर तुम्हारा संदेह और भी बढ़ गया। मैं जानती थी कि हमारे घर में शरत् का आना-जाना तुम लोगों को पसन्द नहीं है। तुम्हें आशंका थी कि ले डूबेगा। इसीलिए मैं भैया-दूज का तिलक भी किसी के साथ भिजवा देती थी, उसे घर नहीं बुलाती थी।

तुम्हीं से सुना कि बिन्दु फिर भाग गयी है। उसका जेठ तुम्हारे घर खोजने आया है। सुनते ही मेरी छाती शूलों से बिंध गयी। हतभागिन का असह्य कष्ट तो समझ गयी, मगर कुछ भी करने का उपाय नहीं था।

शरत् इसकी खोज-खबर लेने दौड़ा। सांझ की वेला लौटकर मुझसे बोला, 'बिन्दु अपने चचेरे भाइयों के घर गयी थी, किन्तु उन्होंने अत्यंत क्रुद्ध होकर उसी समय फिर उसे ससुराल पहुंचा दिया। इसके लिए उन्हें गाड़ी-किराया और हरजाने का जो दण्ड भोगना पड़ा उसकी चुभन अब भी मिटी नहीं है।'

तुम्हारी चाची तीर्थयात्रा के लिए श्रीक्षेत्र जाते समय तुम्हारे यहां आकर ठहरीं। मैंने तुमसे आग्रह किया, मैं भी जाऊंगी।'

सहसा मेरे मन में धर्म के प्रति यह श्रद्धा देखकर तुम इतने खुश हुए कि तनिक भी आपत्ति नहीं की। तुम्हें इस बात का भी ध्यान था कि यदि मैं कलकत्ता रही तो फिर किसी दिन बिन्दु को लेकर फसाद कर बैठूंगी। मेरी वजह से तुम्हें काफी परेशानी थी।

मुझे बुधवार को जाना था; रविवार को ही सब ठीक-ठाक हो गया। मैंने शरत् को बुलाकर कहा, 'जैसे भी हो, बुधवार को पुरी जाने वाली गाड़ी में तुझे बिन्दु को बिठा देना होगा।'

शरत् का चेहरा खिल उठा वह बोला, तुम निंश्चित रहो दीदी, मैं उसे गाड़ी में बिठाकर, पुरी तक चला चलूंगा। इसी बहाने जगन्नाथ के दर्शन भी हो जायेंगे।

उसी दिन शाम को शरत् फिर आया। उसका मुंह देखते ही मेरा दिल बैठा गया। मैंने पूछा, 'क्या बात है, शरत्? शायद कोई उपाय नहीं हुआ।'

वह बोला, 'नहीं।'

मैंने पूछा 'क्या उसे राजी नहीं कर पाये?'

उसने कहा, 'अब ज़रूरत भी नहीं है। कल रात अपने कपड़ों में आग लगा कर उसने आत्महत्या कर ली। उस घर के जिस भतीजे के साथ मैंने मेलजोल बढ़ाया था, उसी से खबर मिली। हां, तुम्हारे नाम वह एक चिट्ठी रख गयी थी, किन्तु वह चिट्ठी उन्होंने नष्ट कर दी।'

चलो शांति हुई!

गांव भर के लोग भन्ना उठे। कहने लगे, 'कपड़ों में आग लगा कर मर जाना तो अब लड़कियों के लिए फैशन हो गया है।'

तुम लोगों ने कहा, 'अच्छा नाटक है।' हुआ करे। किन्तु नाटक का तमाशा केवल बंगाली लड़कियों की साड़ी पर ही क्यों होता है, बंगाली वीर-पुरुषों की धोतियों पर क्यों नहीं होता? इस पर भी तो विचार करना चाहिए।

ऐसा ही था बिन्दी का दुर्भाग्य। जितने दिन ज़िन्दा रही, न रूप का यश मिला और न गुण का। मरते समय भी ज़रा सोच-समझ कर कुछ ऐसे ढंग से मरती कि दुनिया-भर के पुरुष खुशी से ताली बजा उठते। यह भी नहीं सूझा उसे। मर कर भी उसने लोगों को नाराज़ ही किया।

दीदी कमरे में छिप कर रोई। किन्तु उस रोने में एक सान्त्वना थी। कुछ भी हुआ, जान तो बची। मर गयी, यही क्या कम है? ज़िन्दा रहती तो न जाने क्या होता?

मैं श्रीक्षेत्र में आ पहुंची हूं। बिन्दु के आने की अब कोई ज़रूरत नहीं रही। किन्तु, मुझे ज़रूरत थी।

लोग जिसे दुख मानते हैं, वह तुम्हारी गृहस्थी में मुझे कभी नहीं मिला। तुम्हारे घर में खाने-पहनने की कोई कमी नहीं थी। तुम्हारे बड़े भाई का चरित्र चाहे जैसा हो, तुम्हारे चरित्र में ऐसा कोई दोष नहीं, जिसके लिए विधाता को बुरा कह सकूं। यदि तुम्हारा स्वभाव बड़े भाई की तरह होता तो भी शायद मेरे दिन इसी तरह कट जाते और मैं अपनी सती-साध्वी बड़ी जेठानी की तरह पति-परमेश्वर को दोष न देकर विश्व-देवता को ही दोष देने की चेष्टा करती। अतएव, मैं तुमसे कोई शिकवा-शिकायत नहीं करना चाहती। मेरी चिट्ठी का कारण दूसरा है।

किन्तु, मैं अब माखन-बढ़ाल की गली के उस सत्ताईस नम्बर वाले घर में लौट कर नहीं आऊंगी। मैं बिन्दु को देख चुकी हूं। इस संसार में नारी का सच्चा परिचय क्या है, वह मैं पा चुकी हूं। और कुछ भी जानने की ज़रूरत नहीं।

मैंने यह भी देखा हां, वह लड़की ही थी, फिर भी भगवान ने उसका परित्याग नहीं किया। उस पर तुम लोगों का चाहे कितनी ही ज़ोर क्यों न रहा हो, उस ज़ोर की सीमा है। वह अपने हतभागे मानव-जीवन से बड़ी थी। तुम मनमाने ढंग से, अपने दस्तूर से, उसके जीवन को चिरकाल के लिए अपने पांवों तले दबा कर रख सकते, तुम्हारे पांव इतने लंबे नहीं हैं। मृत्यु तुम लोगों से बड़ी है! अपनी मृत्यु के बीच वह महान है। वहां बिन्दु केवल बंगाली घर की लड़की नहीं है, केवल चचेरे भाइयों की बहन नहीं है, केवल अपरिचित पागल पति प्रवंचिता पत्नी नहीं है। वहां वह अनंत है।

मृत्यु की वह बांसुरी उस बालिका के भग्न हृदय से निकल कर जब मेरी जीवन-यमुना के तीर बजने लगी तो पहले-पहल मानो मेरी छाती में कोई बाण बिंध गया हो। मैंने विधाता से प्रश्न किया—संसार में जो कुछ सबसे अधिक तुच्छ है, वही सबसे अधिक कठिन क्यों है? इस गली में चार-दीवारी से घिरे इस निरानंद स्थान में यह जो तुच्छतम बुदबुदा है, वह इतनी भयंकर बाधा कैसे बन गया। तुम्हारा विश्व-जगत अपनी षट ऋतुओं का सुधा-पात्र हाथ में लेकर कितना ही क्यों न पुकारे, एक क्षण-भर के लिए भी मैं उस अंतःपुर की ज़रा-सी चौखट को पार क्यों न कर सकी? तुम्हारे ऐसे भुवन में अपना ऐसा जीवन लेकर मुझे इस अन्यंत तुच्छ काठ-पत्थर की आड़ में ही तिल-तिलकर क्यों मरना होगा? कितनी तुच्छ है, प्रतिदिन की यह मेरी जीवन-यात्रा? कितने तुच्छ हैं—इसके बंधे नियम, बंधे अभ्यास, बंधी हुई बोली और इन सबकी बंधी हुई मार! फिर भी क्या अन्त में दीनता के उस नागपाशी बंधन की ही जीत होगी और तुम्हारी अपनी सृष्टि के आनंदलोक की हार?

किन्तु, मृत्यु की बासुंरी बजने लगी! कहां गयी राजमिस्त्रियों की बनायी हुई वह दीवार, कहां गया तुम्हारे घोर नियमों से बंधा वह कांटो का घेरा? कौन-सा है वह दुख और कौन-सा है वह अपमान जो मनुष्य को बंदी बना कर रख सकता है? यह लो मृत्यु के हाथ में जीवन की जयपताका उड़ रही है! अरी मंझली बहू, तुझे अब डरने की कोई ज़रूरत नहीं। मंझली बहू के इस तेरे खोल को छिन्न होते एक क्षण भी नहीं लगा।

तुम्हारी गली का अब मुझे कोई डर नहीं है। मेरे सामने है आज नीला समुद्र और सर पर आषाढ़ के बादल!

तुम लोगों की रीति-नीति के अधंकार ने मुझे ढक रखा था। क्षण भर के लिए बिन्दु ने आकर उस आवरण के छिद्र से मुझे देख लिया। वही लड़की अपनी मृत्यु के ज़रिये मेरे समूचे आवरण को चिंदी-चिदी कर गयी। आज बाहर आकर देखती हूं, अपना गौरव रखने के लिए कहीं ठौर ही नही है। मेरा यह अनादृत रूप जिनकी आंखों को भाया है, वे चिर-सुदंर सम्पूर्ण आकाश से मुझे निहार रहे हैं। अब मंझली बहू मर चुकी है!

तुम सोच रहे होंगे कि मैं मरने जा रही हूं— डरो नहीं, तुम लोगों के साथ मैं ऐसा भी ठट्ठा नहीं करूंगी। मीराबाई भी तो मुझ जैसी ही नारी थी— उनकी श्रृखलाएं भी तो कम भारी नहीं थीं, मुक्ति के लिए उन्हें तो मारना नहीं पड़ा! मीराबाई ने अपनी वाणी में कहा है, 'भले ही बाप छोड़े, मां छोड़े, चाहें तो सब छोड़ दें, मगर मीरा की लगन वही रहेगी प्रभु, अब जो होना है सो हो।' यह लगन ही तो मुक्ति है।

मैं भी जीवित रहूंगी। मैं सदा-सर्वदा मुक्त हो गयी।

तुम्हारी शरण से विमुक्त

मृणाल

उतरन

वाजिदा तबस्सुम

"निक्को अल्ला, मेरे को बेहोत शरम लगती है।"

"ऐओ, इसमें शरम की क्या बात है? मैं नई उतारी क्या अपने कपड़े?"

"ऊं...।" चमकी शरमाई!

"अब उतारती है कि बोलूं अन्ना बी को?" शहज़ादी पाशा, जिसकी रग-रग में हुक्म चलाने की आदत रमी हुई थी, चिल्ला कर बोली। चमकी ने कुछ डरते-डरते, कुछ शरमाते-शरमाते अपने छोटे-छोटे हाथों से पहले तो अपना कुरता उतारा, फिर पायजामा ...फिर शहज़ादी पाशा के हुक्म पर झाग-भरे टब में उसके साथ कूद पड़ी।

दोनों नहा चुकीं तो शहज़ादी पाशा ऐसी मुहब्बत से, जिसमें अभिमान और स्वामित्व की गहरी छाप थी, मुस्कुरा कर बोली, "होर तू यह बता कि अब तू कपड़े कौन से पेन रई?" "कपड़े?" शहज़ादी पाशा हैरानी से चिल्ला कर नाक सिकोड़ते हुए बोली, "इत्ते गंदे, बदबू वाले? फिर पानी से नहाने का फायदा?"

चमकी ने जवाब देने के बजाय उलटा एक सवाल जड़ दिया, "होर आप क्या पेन रहे, पाशा?" "मैं?" शहज़ादी पाशा बड़े संतोष और गर्व से बोली, "वह मेरी बिस्मिल्लाह के वक्त चमक-चमक का जोड़ा मेरी दादी मां बनाए थे, वोइच, मगर तूने काये को पूछी?"

चमकी क्षण भर के लिए सोच में पड़ गई। फिर हंस कर बोली, "मैं सोच रई थी...।" शहज़ादी पाशा ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, "क्या?" कि एकदम उधर से अन्ना बी की तेज़ चिंघाड़ सुनाई दी, "हो पाशा! ये मेरे को हमाम में से भगाए को तुम इस उजाड़-मारी चोट्टी के साथ क्या बातें मारने ले बैठीं...? जलदी निकलो, नईं तो बी पाशा को अब्बी जी को बोलतोऊं।" अपनी सोची हुई बात चमकी ने जल्दी से कह सुनाई, "पाशा, मैं सोच रही थी कि कब्बी आप होर मैं 'ओढ़नी बदल' बहनां बन गए तो आप के कपड़े मैं भी पेन ले सकती ना?"

"मेरे कपड़े? तेरा मतलब है कि वो सारे कपड़े जो मेरे संदूकां भर-भर को रखे पड़े हैं!"

उत्तर में चमकी ने ज़रा डर कर सिर हिलाया। शहज़ादी पाशा हंसते-हंसते दोहरी हो गई। "ऐओ, कितनी बेवकूफ़ छोकरी है। आगे तू तो नौकरानी है, तू तो मेरी उतरन पहनती है। होर उम्र भर उतरन ही पहनेगी।"

फिर शहज़ादी पाशा ने अपार-प्यार से, जिस में अभिमान और गर्व अधिक, निष्कपटता कम थी, अपना अभी-अभी का नहाने के लिए उतारा जोड़ा चमकी की ओर उछाल दिया, "ये ले, यह उतरन पेन ले। मेरे पास तो बहोत कपड़े हैं।"

चमकी को क्रोध आ गया, "मैं काय को पहनूं, आप पेनो न मेरा जोड़ा।" उसने अपने मैले जोड़े की ओर इशारा किया। शहज़ादी पाशा गुस्से से हुंकारी, "अन्ना बी, अन्ना बी...!"

अन्ना बी ने ज़ोर से दरवाज़े को भड़भड़ाया और दरवाज़ा, जो सिर्फ़ हल्का सा भिड़ा हुआ था, पाटों-पाट खुल गया, "अच्छा, तो आप दोनों साहिबान अभी तक नंगेइच

खड़े वे हैं...!" अन्ना बी नाक पर उंगली रख कर बनावटी गुस्से से बोलीं।

शहज़ादी पाशा ने झट स्टैंड पर टंगा हुआ नरम-नरम गुलाबी तौलिया उठा कर, अपने जिस्म के गिर्द लपेट दिया। चमकी यूं ही खड़ी रही। अन्ना बी ने अपनी बेटी की ओर ज़रा गुस्से से देखा, "होर तू पाशा लोगां के हमाम में काये कू पानी नहाने को आन तुरी?"

"ये इन्नो शहज़ादी पाशा ने बोले कि तू भी मेरे साथ पानी नहा।"

अन्ना बी ने डरते-डरते इधर-उधर देखा कि कोई देख न रहा हो। फिर जल्दी से उसे हमाम से बाहर खींच कर बोलीं, "जल्दी से जा, नौकरखाने में... नई तो सर्दी-वर्दी लग गई तो मरेगी। पेन मेरे कपड़े..." वह शरम से ज़रा सिमटी।

"अब ये चिक्कट गोंद कपड़े निक्को पेन। वह लाल पेटी में शहज़ादी पाशा परसों अपना कुरता-पायजामा दिए थे, वह जाकर पेन ले।"

वहीं खड़ी-खड़ी वह सात वर्ष की नन्ही सी जान बड़ी गहरी सोच के साथ रुक-रुक कर बोली, "अम्मनी, जब मैं होर शहज़ादी पाशा एक बराबर के हैं तो उन्नों मेरे उतरन क्यों नईं पेने?"

"ठहर ज़रा, मैं मम्मा को जाकर बोलतीऊं कि चमकी मेरे को ऐसा बोली...।"

लेकिन अन्ना बी ने डर कर उसे गोद में उठा लिया। "आग्गे पाशा उन्ने तो छिनाल पागल होली गई है। ऐसे दीवानी को बातां काये को अपने मम्मा से बोलते आप? उसके संगात खेलना, न बात करना। चुप उसके नाम पर जूती मार देओ आप।"

शहज़ादी पाशा को कपड़े पहना कर, कंघी-चोटी करके, खाना-वाना खिला कर, जब सारे कामों से निश्चिंत होकर, अन्ना बी अपने कमरे में पहुंची तो देखा कि चमकी अभी तक नंगा झाड़ बनी खड़ी है। आव देखा न ताव, उन्होंने अपनी बेटी को धुनकना शुरू कर दिया।

"जिसका खाती, उसी से लड़ाइयां मोल लेती! छिनाल घोड़ी! अबी-कबी बड़े सरकार निकाल बाहर कर दिए तो किधरे जाएंगे? इत्ते नखरे!"

अन्ना बी के हिसाब से तो यह बड़े भाग्य की बात थी कि वह शहज़ादी पाशा को दूध पिलाने के लिए रखी गई थी। उनके खाने-पीने का स्तर तो बेशक वही था, जो बेगमों का था कि भई वह नवाब साहिब की इकलौती बच्ची को दूध पिलाती थी। कपड़ा-लत्ता भी बेहिसाब था, कि दूध पिलाने वाली के लिए साफ़-सुथरा रहना अनिवार्य था। और सब से ज़्यादा मज़े तो ये थे कि उनकी अपनी बच्ची को, शहज़ादी पाशा की बेहिसाब उतरन मिलती थी। कपड़े-लत्ते मिलने की बात तो तय थी! हद यह कि अकसर चांदी के गहने और खिलौने तक भी उतरन में दिए जाते थे। इधर वह थी कि जब से ज़रा-ज़रा होश संभाल रही थी, बस यही ज़िद किए जाती थी कि मैं बी पाशा की उतरन क्यों पहनूं? कभी-कभार तो आईना देख कर बड़ी सूझ-बूझ के साथ कहती, "अम्मनी, मैं तो बी पाशा से भी अधिक सुंदर हूं ना! फिर तू उन्हें मेरी उतरन पेना ना?"

अन्ना बी हर घड़ी टोकती थी, "बड़े लोग तो बड़े लोग ही ठहरे। अगर किसी ने सुन-गुन पा ली कि मुई अन्ना, ना असल की बेटी ऐसे-ऐसे बोल बोलती है, तो नाक-चोटी काट कर बाहर न कर देंगे?" वैसे भी दूध पिलाने का ज़माना तो अरसा हुआ, बीत गया था। वह तो ड्योढ़ी की परंपरा कहिए, कि अन्ना लोगों की मरे बाद ही छुट्टी की जाती थी। लेकिन दोष भी क्षमा किए जाने योग्य हो, तो ही क्षमा मिलती है। ऐसा भी क्या? अन्ना बी ने चमकी के कान मरोड़ कर उसे समझाया, "आगे से कुछ बोली तो याद रख! तेरे कू उमर भर बी पाशा की उतरन पहनना है। समझी कि नईं गधे की औल्याद!"

गधे की औलाद ने उस समय जुबान तो सी ली, लेकिन मन में लावा पकता ही रहा।

तेरह साल की हुई तो शहज़ादी पाशा की, पहली बार नमाज़े कज़ा हुई। आठवें दिन गुलपाशी हुई तो ऐसा ज़री वाला झिलमिलाता जोड़ा मम्मा ने सिलवाया कि आंख ठहरती नहीं थी। जगह-जगह सोने के घुंघुरुओं की जोड़ियां टंकवाईं कि जब भी पाशा चलती तो 'छन-बन'

पाज़ेबें सी बजतीं। ड्योढ़ी की प्रथा के अनुसार वह बेहद बढ़िया कीमती जोड़ा भी उतरन में दे दिया गया। अन्ना बी खुशी-खुशी वे सौगातें लेकर पहुंची, तो चमकी जो अपनी आयु से कहीं अधिक समझदार और स्वाभिमानी हो चुकी थी, दुख से बोली, "अम्मनी, मजबूरी नाते से लेना होर बात है, लेकिन आप ऐसी चीज़ां ले कर खुश मत हुआ करो।"

"अग्गे बेटा!" वह फुसफुसा कर बोली, "यह जोड़ा अगर बिकाने को भी बैठे, तो दो सौ रुपये तो कहीं नईं गए। अपन लोगां नसीबे वाले हैं कि ऐसी ड्योढ़ी में पड़े।"

"अम्मनी," चमकी ने बड़ी हसरत से कहा, "मेरा जी बोलता कि मैं भी कभी बी पाशा को उतरन दूं?"

अन्ना बी ने सिर पीट लिया। "अग्गे, तू भी जवान हो गई है। ज़रा अख्ल पकड़। ऐसा-वैसी बातां कोई सुन लिया, तो मैं क्या करूंगी? मां, ज़रा मेरे बुड्ढे जूंड़े पर रहम कर।"

चमकी मां को रोता देख कर खामोश रह गई।

मौलवी साहब ने दोनों को साथ ही साथ कुरान शरीफ़ और उर्दू कायदा शुरू कराया था। बी पाशा ने कम और चमकी ने अधिक तेज़ी दिखाई। दोनों ने जब पहली बार कुरान का पाठ खत्म किया गया था तो बड़ी पाशा ने उपकार के तौर पर, चमकी को भी एक हल्के कपड़े का नया जोड़ा सिलवा दिया था। चाहे बाद में उसे बी पाशा का भारी जोड़ा भी उतरन में मिल गया था, लेकिन उसे अपने उसे अपना वह जोड़ा जान से भी ज़्यादा प्यारा था। इस जोड़े से उसे किसी प्रकार के अपमान का अनुभव नहीं होता था। हल्के ज़ाफ़रानी रंग का जोड़ा... जो कितने ही सारे जगमगाते, चमचम करते जोड़ों से बढ़ कर था।

अब जब कि शहज़ादी पाशा ज़रूरत भर पढ़-लिख भी चुकी थीं, जवान भी हो चुकी थीं, उनका घर बसाने की चिंता की जा रही थी। ड्योढ़ी सुनारों, दरज़ियों, व्यापारियों का ठिकाना बन चुकी थी। चमकी यही सोचे जाती कि वह तो शादी के इतने बड़े हंगामे के दिन भी अपना वही जोड़ा पहनेगी जो किसी की उतरन नहीं था।

बड़ी पाशा जो बड़ी दयालु औरत थीं, हमेशा अपने नौकरों का अपनी औलाद ही की तरह ध्यान रखती थीं। इसलिए शहज़ादी पाशा के साथ वह चमकी के विवाह के लिए भी उतनी ही चिंतातुर थीं। आखिर नवाब साहिब से कह-सुन कर उन्होंने एक योग्य लड़का चमकी के लिए तलाश कर ही लिया। सोचा कि शहज़ादी पाशा की शादी के बाद इसी झोड़-झुमके में चमकी का भी निकाह पढ़ दिया जाए।

उस दिन जब शहज़ादी पाशा के निकाह को केवल एक दिन रह गया था और ड्योढ़ी मेहमानों से ठसाठस भरी पड़ी थी और लड़कियों का टिड्डी दल सारी ड्योढ़ी को सिर पर उठाए हुए था, अपनी सखियों के झुरमुट में बैठी हुई शहज़ादी पाशा, पैरों में मेहंदी लगवाए चमकी से कहने लगी, "तू ससुराल जाएगी तो तेरे पैरों में मेहंदी लगाऊंगी।"

"ऐओ, खुदा न करे?" अन्ना बी ने प्यार से कहा, "इसके पांव आप के दुश्मनां छूएं। आप ऐसा बोले, सो बस है। बस इतनी दुआ करना पाशा कि आप के दूल्हा मियां जैसा शरीफ़ दूल्हा इसका निकल जाए।"

"मगर इसकी शादी कब हो रई जी...?" कोई चंचल लड़की पूछ बैठी।

शहज़ादी पाशा वही बचपन वाली अभिमान-भरी हंसी हंस कर बोली, "मेरी इत्ती सारी उतरन निकलेगी, तो इसका दहेज तैयार समझो।"

उतरन... उतरन... उतरन... कई हज़ार सुईयों की बारीक-बारीक नोकें जैसे उसके दिल को बेंध गईं। वह आंसू पीते हुए अपने कमरे में चुपचाप पड़ गई। संध्या होते ही लड़कियों ने फिर ढोलक संभाली। एक से एक वाहियात गाना गाया जा रहा था। पिछली रात रत-जगा हुआ था। आज फिर होने वाला है। परली तरफ़ सहन में ढेरों चूल्हे जलाए बावर्ची लोग भांति-भांति के पकवान तैयार करने में व्यस्त थे। ड्योढ़ी पर रात ही से दिन का गुमान हो रहा था।

चमकी की रोती हुई सुंदरता संतरी जोड़े में और भी खिल उठी। यह जोड़ा है जो उसे हीन-भावना के पाताल से उठा कर आकाश में ऊंचाइयों पर बिठा देता था। यह जोड़ा किसी की उतरन नहीं था। नये कपड़ों से सिला हुआ यह नया जोड़ा, जो उसे जीवन भर में बस एक ही बार नसीब हुआ था। वरना सारा उमर तो शहज़ादी पाशा की उतरन पहनते ही गुज़ारी थी। और चूंकि दहेज भी सारे का सारा उनकी उतरन का ही बना था, इसलिए शेष जीवन भी उसे उतरन इस्तेमाल करनी होगी। 'लेकिन बी पाशा, एक सैयदज़ादी और कहां तक पहुंच सकती है, यह तुम भी देख लेना। तुम एक से एक पुरानी चीज़ मुझे इस्तेमाल करने को दिए न! अब तुम देखना...' मलीदे का थाल उठाए वह दूल्हा वालों की कोठी में प्रविष्ट हुई। हर तरफ़ दीपमाला हो रही थी। यहां भी वही चहल-पहल थी, जो दुल्हन वालों के महल में थी। सुबह निकाह जो पढ़ा जाना था।

इतने बड़े हंगामे और इतनी बड़ी कोठी में, किसी ने उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। पूछती-पूछती वह सीधी दूल्हा मियां के कमरे में जा पहुंची। हल्दी-मेहंदी की रीतों-रस्मों से थके-थकाए दूल्हा मियां अपनी मसहरी पर लेटे हुए थे। परदा हिला, तो वह मुड़े और देखते के देखते रह गए।

घुटनों तक लंबा जाफ़रानी कुरता, कसी-कसी पिंडलियों पर मढ़ा हुआ तंग पायजामा, हल्की-हल्की कामदानी का कढ़ा हुआ जाफ़रानी दुपट्टा। रोई-रोई, भीगी-भीगी गुलाबी आंखें, छोटी आस्तीनों वाले कुरते में से झांकती कोमल-कोमल गदराई बांहे, बालों में मोतिये के गजरे पिरोए हुए, होठों पर एक कातिल सी मुस्कान! यह सब नया नहीं था, लेकिन एक पुरुष जिसकी पिछली कई रातें किसी स्त्री की कल्पना में बीती हों, शादी से एक रात पहले बहुत खतरनाक हो जाता है, चाहे वह कैसा ही शरीफ़ हो।

रात, जो गुनाह का निमंत्रण होती है।

तन्हाई, जो गुनाहों की हिम्मत बढ़ाती है। चमकी ने उन्हें यूं देखा कि वह जगह-जगह से टूट गए। चमकी जान-बूझ कर मुंह मोड़ कर खड़ी हो गई। वह तिलमिलाए से अपनी जगह से उठे और ठीक उसी के सामने खड़े हो गए। आंखों के कोनों से चमकी ने उन्हें यूं देखा कि वह ढेर हो गए।

"तुम्हारा नाम?" उन्होंने थूक निगल कर कहा।

"चमकी!" और एक चमकीली हंसी ने उसके प्यारे-प्यारे चेहरे को चांद कर दिया।

"सचमुच तुम में जो चमक है, उसका तकाज़ा यही था कि तुम्हारा नाम चमकी होता।" उन्होंने डरते-डरते अपना हाथ उसके कंधों पर रख दिया। खालिस मरदाने लहज़े में नहीं जो किसी लड़की को पटाने से पहले ख्वाहमखाह इधर-उधर की हांकते हैं, बल्कि कांपते हुए हाथ कंधे से हटा कर उसके हाथ को पकड़ते हुए बोले, "यह थाल में क्या है?"

चमकी ने जानबूझ कर उनकी हिम्मत बढ़ाई, "आप के वास्ते मलीदा लाई हूं। रत-जगा था ना, रात को।" और उसने बिना तलवार के उन्हें घायल कर दिया। "मुंह मीठा करने को।" वह मुस्कुराई।

"हम मलीदे-वलीदे से मुंह मीठा करने के कायल नहीं हैं। हम तो... हां...।" और उन्होंने होंठों के शहद से मुंह मीठा करने को होंठ बढ़ा दिए और चमकी उनकी बांहों में ढेर हो गई। उनकी पवित्रता लूटने... स्वयं लुटने... उन्हें लूटने के लिए।

विदा के दूसरे दिन ड्योढ़ी की प्रथा के अनुसार जब शहज़ादी पाशा अपनी उतरन, अपना सुहाग का जोड़ा अपनी अन्ना, अपनी खिलाई की बिटिया को देने गई, तो चमकी ने मुस्कुरा कर कहा, "पाशा, मैं ज़िंदगी भर आपकी उतरन इस्तेमाल करती आई, मगर अब आप भी...!" और पागलों की तरह हंसने लगी, "मेरी इस्तेमाल कर ली चीज़ अब ज़िंदगी भर आप भी...।" उसकी हंसी रुकती ही नहीं थी।

सब लोग यही समझे कि बचपन से साथ खेली सखी की जुदाई के गम ने, कुछ देर के लिए चमकी को पागल कर दिया है!

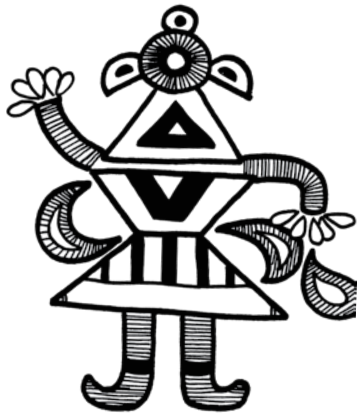

अकेली

मन्नू भंडारी

सोमा बुआ बुढ़िया है।

सोमा बुआ परित्यक्ता है।

सोमा बुआ अकेली है।

सोमा बुआ का जवान बेटा क्या जाता रहा, उनकी जवानी चली गयी। पति को पुत्र-वियोग का ऐसा सदमा लगा कि व पत्नी, घर-बार तजकर तीरथवासी हुए और परिवार में कोई ऐसा सदस्य नहीं था जो उनके एकाकीपन को दूर करता। पिछले बीस वर्षों से उनके जीवन की इस एकरसता में किसी प्रकार का कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ, कोई परिवर्तन नहीं आया। यों हर साल एक महीने के लिए उनके पति उनके पास आकर रहते थे, पर कभी उन्होंने पति की प्रतीक्षा नहीं की, उनकी राह में आँखें नहीं बिछायीं। जब तक पति रहते, उनका मन और भी मुरझाया हुआ रहता, क्योंकि पति के स्नेहहीन व्यवहार का अंकुश उनके रोज़मर्रा के जीवन की अबाध गति से बहती स्वच्छन्द धारा को कुण्ठित कर देता। उस समय उनका घूमना-फिरना, मिलना-जुलना बन्द हो जाता, और संन्यासीजी महाराज से यह भी नहीं होता कि दो मीठे बोल बोलकर सोमा बुआ को एक ऐसा सम्बल ही पकड़ा दें, जिसका आसरा लेकर वे उनके वियोग के ग्यारह महीने काट दें। इस स्थिति में बुआ को अपनी ज़िन्दगी पास-पड़ोसवालों के भरोसे ही काटनी पड़ती थी। किसी के घर मुण्डन हो, छठी हो, जनेऊ हो, शादी हो या गमी, बुआ पहुँच जाती और फिर छाती फाड़कर काम करतीं, मानो वे दूसरे के घर में नहीं, अपने ही घर में काम कर रही हों।

आजकल सोमा बुआ के पति आये हैं, और अभी-अभी कुछ कहा-सुनी होकर चुकी है। बुआ आँगन में बैठी धूप खा रही हैं, पास रखी कटोरी से तेल लेकर हाथों में मल रही हैं, और बड़बड़ा रही हैं। इस एक महीने में अन्य अवयवों के शिथिल हो जाने के कारण उनकी जीभ ही सबसे अधिक सजीव और सक्रिय हो उठती है। तभी हाथ में एक फटी साड़ी और पापड़ लेकर ऊपर से राधा भाभी उतरीं।

“क्या हो गया बुआ, क्यों बड़बड़ा रही हो? फिर संन्यासीजी महाराज ने कुछ कह दिया क्या?”

“अरे, मैं कहीं चली जाऊँ सो इन्हें नहीं सुहाता। कल चौकवाले किशोरीलाल के बेटे का मुण्डन था, सारी बिरादरी की न्यौता था। मैं तो जानती थी कि ये पैसे का गरूर है कि मुण्डन पर सारी बिरादरी को न्यौता है, पर काम उन नयी-नवेली बहुओं से सँभलेगा नहीं, सो जल्दी ही चली गयी। हुआ भी वही।” और सरककर बुआ ने राधा के हाथ से पापड़ लेकर सुखाने शुरू कर दिये। “एक काम गत से नहीं हो रहा था। अब घर में कोई बड़ा-बूढ़ा हो तो बतावे, या कभी किया हो तो जानें। गीतवाली औरतें मुण्डन पर बन्ना-बन्नी गा रही थीं। मेरा तो हँसते-हँसते पेट फूल

गया।" और उसकी याद से ही कुछ देर पहले का दुःख और आक्रोश धुल गया। अपने सहज स्वाभाविक रूप में वे कहने लगीं, "भट्टी पर देखो तो अजब तमाशा—समोसे कच्चे ही उतार दिये और इतने बना दिये कि दो बार खिला दो, और गुलाबजामुन इतने कम कि एक पंगत में भी पूरे न पड़े। उसी समय मैदा सानकर नये गुलाबजामुन बनाये। दोनों बहुएँ और किशोरीलाल तो बेचारे इतना जस मान रहे थे कि क्या बताऊँ! कहने लगे, 'अम्माँ! तुम न होतीं तो आज भद्द उड़ जाती। अम्माँ! तुमने लाज रख ली!' मैंने तो कह दिया कि अरे, अपने ही काम नहीं आवेंगे तो कोई बाहर से तो आवेगा नहीं। यह तो आजकल इनका रोटी-पानी का काम रहता है, नहीं तो मैं सवेरे से ही चली आती!"

"तो संन्यासी महाराज क्यों बिगड़ पड़े? उन्हें तुम्हारा आना-जाना अच्छा नहीं लगता बुआ!"

"यों तो मैं कहीं आऊँ-जाऊँ सो ही इन्हें नहीं सुहाता, और फिर कल किशोरी के यहाँ से बुलावा नहीं आया। अरे, मैं तो कहूँ कि घरवालों का कैसा बुलावा! वे लोग तो मुझे अपनी माँ से कम नहीं समझते, नहीं तो कौन भला यों भट्टी और भण्डारघर सौंप दे। पर उन्हें अब कौन समझावे? कहने लगे, तू ज़बरदस्ती दूसरों के घर में टाँग अड़ाती फिरती है।" और एकाएक उन्हें उस क्रोध-भरी वाणी और कटु वचनों का स्मरण हो आया, जिनकी बौछार कुछ देर पहले ही उन पर होकर चुकी थी। याद आते ही फिर उनके आँसू बह चले।

"अरे, रोती क्यों हो बुआ? कहना-सुनना तो चलता ही रहता है। संन्यासीजी महाराज एक महीने को तो आकर रहते हैं, सुन लिया करो और क्या?"

"सुनने को तो सुनती ही हूँ, पर मन तो दुखता ही है कि एक महीने को आते हैं तो भी कभी मीठे बोल नहीं बोलते। मेरा आना-जाना इन्हें सुहाता नहीं, सो तू ही बता राधा, ये तो साल में ग्यारह महीने हरिद्वार रहते हैं। इन्हें तो नाते-रिश्तेवालों से कुछ लेना-देना नहीं, पर मुझे तो सबसे निभाना पड़ता है। मैं भी सबसे तोड़-ताड़कर बैठ जाऊँ तो कैसे चले? मैं तो इनसे कहती हूँ कि जब पल्ला पकड़ा है तो अन्त समय में भी साथ रखो, सो तो इनसे होता नहीं। सारा धरम-करम ये ही लूटेंगे, सारा जस ये ही बटोरेंगे और मैं अकेली पड़ी-पड़ी यहाँ इनके नाम को रोया करूँ। उस पर से कहीं आऊँ-जाऊँ तो वह भी इनसे बर्दाश्त नहीं होता..." और बुआ फूट-फूटकर रो पड़ीं। राधा ने आश्वासन देते हुए कहा, "रोओ नहीं बुआ! अरे, वे तो इसलिए नाराज़ हुए कि बिना बुलाये तुम चली गयीं।"

"बेचारे इतने हंगामे में बुलाना भूल गये तो मैं भी मान करके बैठ जाती? फिर घरवालों का कैसा बुलाना? मैं तो अपनेपन की बात जानती हूँ। कोई प्रेम नहीं रखे तो दस बुलावे पर नहीं जाऊँ और प्रेम रखे तो बिना बुलाये भी सिर के बल जाऊँ। मेरा अपना हरखू होता और उसके घर काम होता तो क्या मैं बुलावे के भरोसे बैठी रहती? मेरे लिए जैसा हरखू वैसा किशोरीलाल! आज हरखू नहीं है, इसी से दूसरों को देख-देखकर मन भरमाती रहती हूँ।" और वे हिचकियाँ लेने लगीं।

सूखे पापड़ों को बटोरते-बटोरते स्वर को भरसक कोमल बनाकर राधा ने कहा, "तुम भी बुआ बात को कहाँ-से-कहाँ ले गयीं! लो, अब चुप होओ। पापड़ भूनकर लाती हूँ, खाकर बताना, कैसा है?" और वह साड़ी समेटकर ऊपर चढ़ गयी।

कोई सप्ताह-भर बाद बुआ बड़े प्रसन्न मन से आयीं और संन्यासीजी से बोलीं, "सुनते हो, देवरजी के सुसरालवालों की किसी लड़की का सम्बन्ध भागीरथजी के यहाँ हुआ है। वे सब लोग यहीं आकर ब्याह कर रहे हैं। देवरजी के बाद तो उन लोगों से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा, फिर भी हैं समधी ही। वे तो तुमको भी बुलाये बिना नहीं मानेंगे। समधी को आखिर कैसे छोड़ सकते हैं?" और बुआ पुलकित होकर हँस पड़ी। संन्यासीजी की मौन उपेक्षा से उनके मन को ठेस तो पहुँची, फिर भी वे प्रसन्न थीं। इधर-उधर जाकर वे इस विवाह की प्रगति की खबरें लातीं! आखिर एक दिन वे यह भी सुन आयीं कि उनके समधी यहाँ आ गये। ज़ोर-शोर से तैयारियाँ हो रही हैं। सारी बिरादरी को दावत दी जायेगी—खूब रौनक होने वाली है। दोनों ही पैसेवाले ठहरे।

"क्या जाने हमारे घर तो बुलावा आयेगा या नहीं? देवरजी को मरे पच्चीस बरस हो गये, उसके बाद से तो

कोई सम्बन्ध ही नहीं रखा। रखे भी कौन? यह काम तो मर्दों का होता है, मैं तो मर्दवाली होकर भी बेमर्द की हूँ।" और एक ठण्डी साँस उनके दिल से निकल गयी।

"अरे, वाह बुआ! तुम्हारा नाम कैसे नहीं हो सकता! तुम तो समधिन ठहरीं। सम्बन्ध में न रहे, कोई रिश्ता थोड़े ही टूट जाता है!" दाल पीसती हुई घर की बड़ी बहू बोली।

"है, बुआ, नाम है। मैं तो सारी लिस्ट देखकर आयी हूँ।" विधवा ननद बोली। बैठे-ही-बैठे एकदम आगे सरककर बुआ ने बड़े उत्साह से पूछा, "तू अपनी आँखों से देखकर आयी है नाम? नाम तो होना ही चाहिए। पर मैंने सोचा कि क्या जाने आजकल की फैशन में पुराने सम्बन्धियों को बुलाना हो, न हो।" और बुआ बिना दो पल भी रुके वहाँ से चली पड़ीं। अपने घर जाकर सीधे राधा भाभी के कमरे में चढ़ी, "क्यों री राधा, तू तो जानती है कि नए फैशन में लड़की की शादी में क्या दिया जावे है? समधियों का मामला ठहरा, सो भी पैसेवाले। खाली हाथ जाऊँगी तो अच्छा नहीं लगेगा। मैं तो पुराने ज़माने की ठहरी, तू ही बता दे, क्या दूँ? अब कुछ बनने का समय तो रहा नहीं, दो दिन बाकी हैं, सो कुछ बना-बनाया ही खरीद लाना।"

"क्या देना चाहती हो अम्मा—ज़ेवर, कपड़ा या शृंगारदान या कोई और चांदी की चीज़ें?"

"मैं तो कुछ भी नहीं समूझँ, री। जो कुछ पास है, तुझे लाकर दे देती हूँ, जो तू ठीक समझे ले आना, बस भद्द नहीं उड़नी चाहिए! अच्छा, देखूँ पहले कि रुपये कितने हैं। और वे डगमगाते कदमों से नीचे आयीं। दो-तीन कपड़ों की गठरियाँ हटाकर एक छोटा-सा बक्स निकाला। बड़े जतन से उसे खोला—उसमें सात रुपये, कुछ रेज़गारी पड़ी थी, और एक अँगूठी। बुआ का अनुमान था कि रुपये कुछ ज़्यादा होंगे, पर जब सात ही रुपये निकले तो सोच में पड़ गयीं। रईस समधियों के घर में इतने-से रुपयों से तो बिन्दी भी नहीं लगेगी। उनकी नज़र अँगूठी पर गयी। यह उनके मृत-पुत्र की एकमात्र निशानी उनके पास रह गयी थी। बड़े-बड़े आर्थिक संकटों के समय भी वे उस अँगूठी का मोह नहीं छोड़ सकी थीं। आज भी एक बार उसे उठाते समय उनका दिल धड़क गया। फिर भी उन्होंने पाँच रुपये और वह अँगूठी आँचल में बाँध ली। बक्स को बन्द किया और फिर ऊपर को चलीं। पर इस बार उनके मन का उत्साह कुछ ठण्डा पड़ गया था, और पैरों की गति शिथिल! राधा के पास जाकर बोलीं, "रुपये तो नहीं निकले बहू। आये भी कहाँ से, मेरे कौन कमानेवाला बैठा है? उस कोठरी का किराया आता है, उसमें तो दो समय की रोटी निकल जाती है जैसे-तैसे!" और वे रो पड़ीं। राधा ने कहा, "क्या करूँ बुआ, आजकल मेरा भी हाथ तंग है, नहीं तो मैं ही दे देती। अरे, पर तुम देने के चक्कर में पड़ती ही क्यों हो? आजकल तो देने-लेने का रिवाज ही उठ गया।"

"नहीं रे राधा! समधियों का मामला ठहरा! पच्चीस बरस हो गये तो भी वे नहीं भूले, और मैं खाली हाथ जाऊँ? नहीं, नहीं, इससे तो न जाऊँ सो ही अच्छा!"

"तो जाओ ही मत। चलो छुट्टी हुई, इतने लोगों में किसे पता लगेगा कि आयी या नहीं।" राधा ने सारी समस्या का सीधा-सा हल बताते हुए कहा।

"बड़ा बुरा मानेंगे। सारे शहर के लोग जावेंगे, और मैं समधिन होकर नहीं जाऊँगी तो यही समझेंगे कि देवरजी मरे तो सम्बन्ध भी तोड़ लिया। नहीं, नहीं, तू यह अँगूठी बेच ही दे।" और उन्होंने आँचल की गाँठ खोलकर एक पुराने ज़माने की अँगूठी राधा के हाथ पर रख दी। फिर बड़ी मिन्नत के स्वर में बोलीं, "तू तो बाज़ार जाती है राधा, इसे बेच देना और जो कुछ ठीक समझे खरीद लेना। बस, शोभा रह जावे इतना ख्याल रखना।"

गली में बुआ ने चूड़ीवाले की आवाज़ सुनी तो एकाएक ही उनकी नज़र अपने हाथ की भद्दी-मटमैली चूड़ियों पर जाकर टिक गयी। कल समधियों के यहाँ जाना है, ज़ेवर नहीं तो कम-से-कम काँच की चूड़ी तो अच्छी पहन ले। पर एक अत्यन्त लाज ने उनके कदमों को रोक दिया। कोई देख लेगा तो? लेकिन दूसरे क्षण ही अपनी इस कमज़ोरी पर विजय पाती-सी वे पीछे के दरवाज़े पर पहुँच गयीं और एक रुपया कलदार खर्च करके लाल-हरी चूड़ियों के बन्द पहन लिये। पर सारे दिन हाथों को साड़ी के आँचल से ढके-ढके फिरीं।

शाम को राधा भाभी ने बुआ को चाँदी की एक सिन्दूरदानी, एक साड़ी और एक ब्लाउज़ का कपड़ा लाकर

दे दिया। सब कुछ देख पाकर बुआ बड़ी प्रसन्न हुईं, और यह सोच-सोचकर कि जब वे ये सब दे देंगी तो उनकी समधिन पुरानी बातों की दुहाई दे-देकर उनकी मिलनसारिता की कितनी प्रशंसा करेगी, उनका मन पुलकित होने लगा। अँगूठी बेचने का गम भी जाता रहा। पासवाले बनिये के यहाँ से एक आने का पीला रंग लाकर रात में उन्होंने साड़ी रंगी। शादी में सफेद साड़ी पहनकर जाना क्या अच्छा लगेगा? रात में सोयीं तो मन कल की ओर दौड़ रहा था।

दूसरे दिन नौ बजते-बजते खाने का काम समाप्त कर डाला। अपनी रंगी हुई साड़ी देखी तो कुछ जँची नहीं। फिर ऊपर राधा के पास पहुँची, "क्यों राधा, तू तो रंगी साड़ी पहनती है तो बड़ी आब रहती है, चमक रहती है, इसमें तो चमक आयी नहीं!"

"तुमने कलफ़ जो नहीं लगाया अम्माँ, थोड़ा-सा माँड दे देतीं तो अच्छा रहता। अभी दे लो, ठीक हो जायेगी। बुलावा कब का है?"

"अरे, नये फैशन वालों की मत पूछो, ऐन मौकों पर बुलावा आता है। पांच बजे का मुहूरत है, दिन में कभी भी आ जावेगा।"

राधा भाभी मन-ही-मन मुस्करा उठी।

बुआ ने साड़ी में माँड लगाकर सुखा दिया। फिर एक नयी थाली निकाली, अपनी जवानी के दिनों में बुना हुआ क्रोशिये का एक छोटा-सा मेजपोश निकाला। थाली में साड़ी, सिन्दूरदानी, एक नारियल और थोड़े-से बताशे सजाये, फिर जाकर राधा को दिखाया। सन्यासी महाराज सवेरे से इस आयोजन को देख रहे थे, और उन्होंने कल से लेकर आज तक कोई पच्चीस बार चेतावनी दे दी थी कि यदि कोई बुलाने न आये तो चली मत जाना, नहीं तो ठीक नहीं होगा। हर बार बुआ ने बड़े ही विश्वास के साथ कहा, "मुझे क्या बावली समझ रखा है जो बिन बुलाये चली जाऊँगी? अरे वह पड़ोसवालों की नन्दा अपनी आँखों से बुलावे की लिस्ट में नाम देखकर आयी है। और बुलायेंगे क्यों नहीं? शहरवालों को बुलायेंगे और समधियों को नहीं बुलायेंगे क्या?"

तीन बजे के करीब बुआ को अनमने भाव से छत पर इधर-उधर घूमते देख राधा भाभी ने आवाज़ लगायी, "गयीं नहीं बुआ?"

एकाएक चौंकते हुए बुआ ने पूछा, "कितने बज गये राधा? ... क्या कहा, तीन? सरदी में तो दिन का पता नहीं लगता। बजे तीन ही हैं और धूप सारी छत पर से ऐसे सिमट गयी मानो शाम हो गयी।" फिर एकाएक जैसे ख्याल आया कि यह तो भाभी के प्रश्न का उत्तर नहीं हुआ, ज़रा ठण्डे स्वर में बोलीं, "मुहूरत तो पाँच बजे का है, जाऊँगी तो चार तक जाऊँगी, अभी तो तीन ही बजे है।" बड़ी सावधानी से उन्होंने स्वर में लापरवाही का पुट दिया। बुआ छत पर से गली में नज़र फैलाये खड़ी थीं, उनके पीछे ही रस्सी पर धोती फैली हुई थी, जिसमें कलफ़ लगा था, और अबरक छिड़का हुआ था। अबरक के बिखरे हुए कण रह-रहकर धूप में चमक जाते थे, ठीक वैसे ही जैसे किसी को भी गली में घुसता देख बुआ का चेहरा चमक उठता था।

सात बजे के धुँधलके में राधा ने ऊपर से देखा तो छत की दीवार से सटी, गली की ओर मुँह किये एक छाया-मूर्ति दिखायी दी। उसका मन भर आया। बिना कुछ पूछे इतना ही कहा, "बुआ!" सर्दी में खड़ी-खड़ी यहाँ क्या कर रही हो? आज खाना नहीं बनेगा क्या, सात तो बज गये।

जैसे एकाएक नींद में से जागते हुए बुआ ने पूछा, "क्या कहा सात बज गये?" फिर जैसे अपने से ही बोलते हुए पूछा, "पर सात कैसे बज सकते हैं, मुहूरत तो पाँच बजे का था!" और फिर एकाएक ही सारी स्थिति को समझते हुए, स्वर को भरसक संयत बनाकर बोलीं, "अरे, खाने का क्या है, अभी बना लूँगी। दो जनों का तो खाना है, क्या खाना और क्या पकाना!"

फिर उन्होंने सूखी साड़ी को उतारा। नीचे जाकर अच्छी तरह उसकी तह की, धीरे-धीरे हाथों की चूड़ियाँ खोलीं, थाली में सजाया हुआ सारा सामान उठाया और सारी चीज़ें बड़े जतन से अपने एकमात्र सन्दूक में रख दीं।

और फिर बड़े ही बुझे हुए दिल से अँगीठी जलाने लगीं।

जानकी

विजय लक्ष्मी चौहान

अगर कोई मुझसे कहे कि शिक्षा लोगों को अक्लमंद बनाती है तो मैं कहूंगा— सब बकवास है। अगर कोई कहे कि धन-धान्य व बड़े आलीशान बंगले में रहने से खुशियां मिलती हैं तो भी मैं कहूंगा यह सच नहीं है। लोग समझते हैं मैं पागल हूं। अगर पागल नहीं होता तो नीम के पेड़ के नीचे बैठकर, रुपये-दो रुपये के लिए साईकिल मरम्मत क्यों करता? कोई बढ़िया सी नौकरी नहीं ढूंढता? पर ये सब अनजान हैं। ये उस सच्चाई से वाक़िफ नहीं है जो मेरे सीने में दफ़न है। वे नहीं जानते कि ज़्यादा होने का मतलब सब कुछ होना नहीं है। मेरे मालिक सुधीर व जानकी ठाकुर-उनके पास तो वह सब कुछ था जिसके लोग ख़्वाब देखते हैं— आलीशान घर, दो कारें, दोस्त, नाम, पैसा, रुतबा। सुधीर साब एक बड़ी कपड़े की फर्म में मैनेजर थे। जानकी मेमसाब एक सफल वकील। मैं बारह साल का था जब अपना गांव और पांचवी की पढ़ाई अधूरी छोड़कर जयपुर आया था, काम की तलाश में। दादी के गुज़र जाने पर मैं दूसरी बार अनाथ हो गया था। पहली बार मैं यतीम तब हुआ था जब गांव में बाढ़ आई, नौ साल पहले और अन्य चीज़ों के साथ मेरे माता-पिता को भी बहा ले गई थी। पर ये मेरी कहानी नहीं है। ये उन लोगों की जीवन गाथा है जिन्हें मैं सबसे ज़्यादा प्यार करता था। जानकी मेमसाब और सुधीर साब की- वह जोड़ी जिसे मैं राम-सीता की जोड़ी कहा करता था।

जानकी मेमसाब ने मुझे घर के छुट-पुट कामों के लिए रखा था-चाय बनाना, बाज़ार से सौदा-सुल्फ़ लाना, साब की गाड़ी धोना व अन्य हल्के-फुल्के काम। उस समय मेमसाब गर्भपात होने के कारण घर पर आराम कर रही थीं। दूसरे नौकर भी थे— मिसरानी, झाड़ू-पोंछा करने वाली बाई, ड्राइवर, माली पर घर में चौबीसों घंटे रहने वाला मैं ही था। एक वर्ष बाद जब रसोइया चला गया तब उसका काम भी मैंने ही संभाल लिया। साब और मेमसाब मुझ पर भरोसा करते, अपने बच्चे की तरह मानते थे। बदकिस्मती से उनके खुद के बच्चे नहीं थे। मैं रोज़ हनुमान चालीसा पढ़ता और हनुमान जी से विनती करता कि उनको औलाद की खुशी दें परन्तु भगवान ने भी मेरी बात नहीं सुनी थी।

मुझे काम करते हुए कुछ ही दिन हुए थे जब जानकी मेमसाब ने मेरा स्कूल में दाख़िला कराने का निश्चय किया। वह नहीं चाहती थी कि मैं पूरी ज़िंदगी बर्तन धोने या खाना पकाने में बरबाद करूं। मैं सुबह स्कूल जाता, दोपहर को वापस लौटता, मेमसाब के पेड़-पौधों को पानी देता, साब के लौटने पर दोनों के लिए चाय बनाता और पेड़ के नीचे बैठकर स्कूल का होमवर्क करता। हमारे यहां खूब सारे फूलों वाले पेड़ थे— सेमल, गुलमोहर, हरसिंगार। खुशबूदार पौधे भी थे-चंपा, चमेली, जुही। पर मुझे रात की रानी सबसे ज़्यादा पसंद थी-उसकी खुशबू रात ढलने के साथ-साथ और भी मनमोहक होती जाती थी।

मुझे अभी भी याद है वह मदहोश करने वाली खुशबू जो साहब की स्टडी को सराबोर कर रही थी, उस रात जब मैं खिड़की बंद करने गया। हम रात ढलने से पहले मेमसाब के लौटने का इंतज़ार कर रहे थे।

'यह सर्वोच्च न्यायालय में मेरा पहला केस है,' दिल्ली जाने के एक रोज़ पहले उन्होंने मुझे बताया था। मैं आमलेट के लिए प्याज़ काट रहा था। 'मंगू मुझे यह केस जीतना होगा' वह बोलीं। 'आप जीतेंगी' मैनें प्याज़ की धांस से बहते आंसू पोंछते हुए कहा। 'आप इतना सब कुछ तो जानती हैं मेमसाब'। मेमसाब बहुत होशियार थीं। अगर इतनी काबिल न होती तो दो बार केस जीतने पर अखबार में उनका फोटो कैसे छपता? मैं हनुमान जी से प्रार्थना करूंगा,' मैंने कहा। मेमसाब ने अपनी प्यारी सी मुसकुराहट बिखेरते हुए मेरे सर पर हाथ फेरा और मुझे लगा जैसे खिड़की से सूरज की किरणों ने आकर पूरी रसोई को रोशन कर दिया है।

'मैं परसों वापस लौटूंगी', उन्होंने साब से कहा! हर दिन की तरह साब दफ्तर में ज़रूरी मीटिंग के लिए निकलने से पहले चाय गटक रहे थे। कप नीचे रखकर उन्होंने मेमसाब का हाथ अपने हाथों में लेकर कहा, 'अच्छा रहता अगर तुम ट्रेन या

हवाई जहाज़ से जातीं। मुझे तुम्हारा दिल्ली-जयपुर हाइवे पर अकेले गाड़ी चलाकर जाना कुछ ठीक नहीं लगता, खासकर रात के समय जब ट्रक चालक नशे में धुत्त होकर अंधाधुंध गाड़ी चलाते हैं।'

साब बेकार ही इतनी चिंता करते हैं। मेमसाब हमेशा मुझसे यही कहती थीं। 'अगर उनके पास समय होता तो केस खत्म होने से लेकर मेरे घर लौटने तक वे घड़ी की सुईयां ही गिनते रहते।'

एक बार पक्का इरादा कर लेने के बाद मेमसाब किसी की कोई बात नहीं सुनती थी। मुस्कुराते हुए वह साब से बोली, 'फिर चिन्ता। तुम जानते हो मैं कितनी सावधानी से गाड़ी चलाती हूं। मैंने कभी भी कोई दुर्घटना नहीं की है।' 'हां यह तो सच है,' शब्दों को सावधानी से तोलते हुए साब ने जवाब दिया, 'पर तुम जानती हो न-तुम रात को दिल्ली में रुककर सुबह क्यों नहीं वापस आतीं?'

'मैं घर आना चाहती हूं, सुधीर' हथेली के बीच साब का हाथ दबाते हुए मेमसाब प्यार से बोलीं। 'किसी बेकार से होटल में रात क्यों बिताऊं'। साब खामोश हो गये। क्यों-कैसे? पर उनके माथे पर चिंता की रेखाएं तब भी बिखरी पड़ी थीं जब वे दफ़्तर जाने के लिए गाड़ी में बैठे।

थोड़ी देर बाद दूसरे दिन रात के खाने के समय लौटने का वादा करके मेमसाब भी चली गईं। 'जल्दी वापस आईएगा' मैंने उन्हें गाड़ी में बैठते देख कहा। उनकी गैर मौजूदगी में खाली घर मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था। तब घर बहुत बड़ा और उदासीन प्रतीत होता था। मुझे कोई खास काम भी नहीं होते थे- साब मेमसाब के न होने पर बहुत कम खाते थे। सारा दिन अपनी स्टडी में बैठकर काम करते रहते थे। मैं अपना वक़्त पढ़ने या टीवी देखने में बिताता था।

शाम को मेमसाब लौटने वाली थी, मैंने उनकी व साब की पंसद का खाना बनाया। साब का पसंदीदा भरवां करेला और मेमसाब के लिए माखनी दाल। उनके लौटने के ख़्याल से ही घर की दीवारें जीवंत हो उठी थीं। सूरज डूब रहा था और उसकी लालिमा किरणें पेड़ों की शाखाओं पर अठखेलियां कर रही थीं। चिड़ियों की चहचहाहट रात के सन्नाटों में धीरे-धीरे ढल रही थी। दूर कहीं किसी रेडियो पर कोई फ़िल्मी गीत के स्वर हवा में घुल रहे थे। काम से वापस लौटकर साब सीधे अपनी स्टडी में चले गये थे। जाने से पहले चाय की ट्रे से एक बिस्कुट उठाते हुए उन्होंने मुझे हिदायत दी, 'मैं उनके लौटने से पहले सब काम खत्म करना चाहता हूं। अगर किसी का फोन आये तो कहना मैं घर पर नहीं हूं।'

'जी साब,' मैं अवांछनीय फोन करने वालों से साब को दूर रखना बखूबी जानता था। पर उस शाम मैं उन्हें *होनी* के ज़हरीले शिकंजों से नहीं बचा पाया। *होनी* उस शाम उस नीच धोबी के रूप में हमारे घर आई थी। मैं खीर के लिए पिस्ते छील रहा था जब धोबिन ने चीखना शुरू किया था।

सट्राक! चट्राक! चीखें। गालियां। धोबी उसे फिर पीट रहा था। शाम की निस्तब्धता तिनके-तिनके होकर बिखर गई— 'तू कोढ़ी की मौत मरेगा', तेरे मुँह में पानी डालने वाला भी कोई नहीं बचेगा,' धोबिन चिल्ला रही थी। 'चुप कर, चुड़ैल'। 'हाय राम, पागल कुत्ता नशे में धुत्त है। यह मुझे मार डालेगा। हे भगवान मेरे बच्चे अनाथ हो जाएंगे।' मैं घबरा रहा था कि अब साब फट पड़ेंगे। उन्हें धोबी के ये रोज़ के झगड़ो-टंटो से सख्त नफ़रत थी। सच तो यह था कि वह धोबी का टीन-टप्पर कब का फिंकवा चुके होते अगर मेमसाब ने बीच में उन्हें न समझाया होता, 'वह मूर्ख, अनपढ़ जाहिल है, वह कहती थी। तुम उसको नहीं बदल सकते।' 'छोड़ो भी।' मेमसाब और कालोनी की अधिकतर औरतों को यह छोटा सा प्रेस का अड्डा पसंद था। वे यहां से झटपट साड़ी, कमीज़, ब्लाउज़ प्रेस करा सकती थीं। धोबी सुबह-सुबह घरों से गंदे कपड़े भी इकट्ठे करके ले जाता था, फिर उन्हें नदी पर धोकर धोबिन को देता। प्रेस करके साफ़-सुथरे कपड़े दूसरे दिन घरों में पहुंच जाते।

'भगवान करे तू उसी नदी में डूब मरे जिसमें तू कपड़े धोता है,' धोबिन की आवाज़ मेरे कानो के पर्दे फाड़ रही थी। 'अगर तुझे कोई मगरमच्छ खा जाए तो भी मैं एक टसुआ न बहाऊंगी।' हा! हा! धोबी का अट्टाहास, 'अरे बावली नदी में एक भी मगरमच्छ नहीं है। अगर होता तो मैंने तुझे पहले ही उसके मुँह में झोंक दिया होता।' पास-पड़ोस के नौकरों की हंसी की आवाज़ें भी मुझे सुनाई दे रही थीं। वे सब बाहर खड़े होकर तमाशे का लुत्फ़ उठा रहे होंगे। 'तुम कर भी क्या सकते हो। कोई बेगैरत मर्द ही अपनी पत्नी का यूं तमाशा बनाकर उसे बद्दुआ देता है...।' 'मंगू' साब की गुस्से भरी आवाज़ सुनकर मैं पिस्ते छोड़कर स्टडी की तरफ दौड़ा। 'क्या तुम उन्हें चुप रहने को नहीं कह सकते।' मुझे देखते ही वह बोले। 'जी साब, मैं जाने के लिए मुड़ा।'

'हरामी', साब ने मेज़ पर मुक्का मारा और सारे कागज़ों का पुलिंदा कमरे में इधर-उधर बिखर गया। मैंने चुपचाप सब

कागज़ समेटे और वापस मेज़ पर रख दिए। 'आज वह किस बात पर उसे पीट रहा है। 'कुछ नहीं साब। बेकार है, बकवास।' 'तो क्या बात है।' 'वह पागल है साब। एकदम पागल।'

'वो तो है। मैं उस बेवकूफ़ से बात करता हूं', बुदबुदाते हुए साब कुर्सी खींच का उठे। 'नहीं, साब! वे पीए हुए है।' मैं साहब को रोकना चाहता था। जानता था धोबी की बकबास साहब बर्दाश्त नहीं कर पाएंगे। उन्हें अपने गुस्से पर काबू नहीं था।'

धोबी फिर चिल्लाने लगा था, 'बेशर्म औरत, तू...।' 'इसका दिमाग एकदम खराब हो गया है। ऐसे बक रहा है जैसे वह किसी दूसरे आदमी के साथ भाग गई हो। क्या माजरा है मंगू?' 'धोबिन की वह फोटो जो आपने रमेश बाबू के साथ...', मेरी बात पूरी होने से पहले साब हंसने लगे थे।

रमेश बाबू साब के दोस्त थे, स्कूल से। अमरीका से भारत वह फ़िल्म बनाने के लिए आए थे-केरल के मछुआरों की जीवनी। केरल जाने से पहले वे चार दिन हमारे साथ रहे। उन चार दिनों में उन्होंने इतनी सारी बातें की और सब को इतना हँसाया कि पूरा घर ही खुशी से झूमता प्रतीत हुआ। वे बड़े ही बेचैन किस्म के इंसान थे, एक जगह टिककर नहीं बैठते थे। चूंकि साब उस समय रिपोर्ट लिखने में व्यस्त थे लिहाज़ा उनका ज़्यादा समय मेमसाब के साथ ही बीतता था। वहीं उन्हें घुमाने-फिराने-शापिंग ले जाती थीं। रात में देर तक उनसे बातें करतीं जब साब अपना काम निपटा रहे होते थे। मैंने मेमसाब को इतना हंसते हुए कभी नहीं देखा था। जब रमेश बाबू चले गये तब ऐसा लगा जैसे सूरज का उजास उनके साथ चला गया हो।

'न्यूयार्क लौटने से पहले तुम वापस यहां आना', साब ने कहा था। वे खाना खा रहे थे और मैं उन्हें गरमा-गरम चपाती परोस रहा था।

'काश मैं कुछ दिन और रुक सकता,' वह बोले, 'परन्तु मुझे यह काम दो हफ़्तों में निपटाना है। अगली बार वादा रहा।' 'ठीक है' साब बोले, 'तब हम सब माउंट अबू चलेंगे। कोई रिपोर्ट नहीं लिखूंगा। कोई ब्रीफ नहीं तैयार की जाएगी।' उन्होंने मेमसाब को आंख मारी।

मुझे यकीन है कि उस समय *होनी* किसी कोने से उनकी इस खुशी को नज़र लगा रही थी- मेरी नानी भी यहीं कहती थीं।

रमेश बाबू के केरल जाने से एक दिन पहले मुझे अच्छी तरह याद है- वे बेचैनी से घूमते तस्वीरे खींच रहे थे— यहां-वहां। बगीचे में गुलाब की झाड़ियां छांट रही, सूखी पत्तियों के बीच बैठी मेमसाब। या पान चबाता, सब्ज़ियां काटता, हनुमान जी की आरती उतारता मैं। पेड़ों, पौधों और पंछियों की तस्वीरें।

'मैं तुम दोनों की एक सहज सी फोटो खींचना चाहता हूं,' उन्होंने साब-मेमसाब को अनायास ही कहा। फिर उन दोनों का सेमुल के लाल फूलों के झुरमुट तले बैठाकर खच्च से फोटो उतार डाली।

यही तस्वीर अब साब की मेज की शोभा बढ़ा रही थी। मेमसाब इसमें बड़ी मासूम लग रही थी, गालों पर मिट्टी और हवा से बिखरे बाल। साब हमेशा की तरह बिल्कुल टिच्च, खादी का पाजामा-कुर्ता और हाथ मेमसाब के कंधों तक पहुंचने के लिए आधा उठा हुआ, होठों के कोनों पर बिखरी मुस्कुराहट, जब रमेश बाबू ने कैमरे का बटन दबा दिया था। काश वह दो सैकंड़ रुके होते, तस्वीर तब पूरी होती। साब का हाथ मेमसाब के कंधों पर होता और उनकी हंसी आखों तक पहुंची होती। पर कुछ बातें अधूरी ही रहती हैं— यही नियति को मंजूर होता है।

रमेश बाबू कैमरा रख रहे थे जब धोबिन अपने दोनों बच्चों को लेकर आ पहुंची। 'एक फोटो मेरे बच्चों की भी उतार दो बाबू' उसने मनुहार की।

रमेश बाबू ने उसे छोटे बच्चे को गोदी में उठाने के लिए कहा वह दूसरा हाथ बड़े के कंधे पर रखवाया। 'यहां खड़े हो बेटे और मुझे अपने दांत दिखाओ।'

कैमरे का फोकस साध कर उन्होंने कैमरा साब को थमाया, 'तुम खींचो' और फुर्त्ती से धोबिन के बगल में आ खड़े हुए।

धोबिन खिलखिलाकर हंस पड़ी। दुबला-पतला मूंछो वाला पुरुष, चेहरे पर चोट का निशान, चौड़ी नाक पर फिसलता चश्मा और खुला मुँह— उसे भी यह मंज़र गुदगुदा गया। साब ने उसी क्षण को फोटो में कैद कर लिया था। रमेश बाबू सिर पीछे कर खिलखिलाते हुए और धूप में चमकता उनका चोट का निशान। बेडौल, ठिगनी धोबिन जिसने हंसी दबाने के लिए अपनी साड़ी का कोर मुंह में ठूस लिया था और गोल-गोल आंखों वाले बच्चे ने, अपने दांत दिखाने के लिए मुंह में ऊंगली डालकर उसे बड़ा सा खोल लिया था। वह दिन बड़ा ही खूबसूरत था, मार्च का महीना, हल्का गर्म सूरज, नर्म हवा के झोकें और लहलहाते भीनी-खुशबू बिखेरते गुलाब के फूल।

'भई उस फोटो में ऐसा क्या है'- कुर्सी पर पसरते हुए साब ने पूछा। 'वह एक गैर मर्द के साथ खड़ी है', मैंने समझाया। 'यह एक औरत के लिए सहीं नहीं है, धोबी कहता है।'

मैंने राहत की सांस ली, धोबी की आवाज़ धीमी हो गई थी। लगता है फिर पीने बैठ गया होगा। 'मैं खिड़की बंद कर देता हूं साब,' मैं खुली खिड़की की ओर बढ़ा। तभी रात की रानी की मदहोश खुशबू मेरे नथुनों तक पहुंची थी। मुझे अभी भी याद है वह महक। आज भी जब नीम के पेड़ तले मैं साइकिल बनाता हूं तो वहीं बावली महक मुझे झकझोर जाती है। मैं रसोई में लौटा ही था कि धोबी की बकझक फिर शुरु हो गई।

'...अरे वह अपनी बीवी को दूसरे मर्द के साथ गुलछर्रे उड़ाने की छूट दे सकता है। मेरे साथ यह सब नहीं चलेगा। अमीरों के अपने नए चोंचलें, बेहूदे नियम-कायदे होते हैं।'

मुझे इसे चुप कराना ही होगा, मैंने सोचा। बहुत अनाप-शनाप बक चुका यह। अगर साब ने धोबी की यह बकवास सुन ली तो इसका खून कर देंगे। मैं साब का गुस्सा जानता था। 'हनुमान लला, मदद करो', मैंने रसोई में रखी छोटी मूर्ति के आगे सर नवाया और बाहर निकल गया।

धोबी एक कूड़ेदान के पास बैठा चांद को निहार रहा था। मुझे आता देख उसने अपनी बोतल मेरी ओर बढ़ा दी। मैंने उसे डपटकर घर जाने को कहा। 'अरे तो छुटका बंदर भी कुलांचे भरने लगा है' मेरा मज़ाक उड़ाते हुए उसने कहा। 'चुप बदज़ात बहुत ज़्यादा बोलने लगा है' मैंने जवाब दिया।

वह नशे में इस कदर धुत्त था कि मेरी बात की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। जितना मैं उसे डांटता उतना वह अधिक उग्र होता जाता। बोतल से एक और घूंट भरते हुए उसने हमारे घर की ओर देखकर एक भद्दा सा इशारा किया। 'मेरी जोरू तेरे साब की बीबी नहीं है जो किसी भी गैर मर्द के साथ घूमती फिरे। मैं तेरे साब की तरह अंधा नहीं हूं। अरे तू क्या जाने? वह मेरी लुगाई को सिखाती है कि मुझे छोड़ दे क्योंकि मैं उसकी पिटाई करता हूं।'

वह मेरे सर के ऊपर से हमारे घर की ओर एकटक नज़र जमाए था। मैंने मुड़कर देखा-साब खिड़की पर खड़े थे। क्या उन्होंने सब कुछ सुन लिया? मेरा दिल बहुत ज़ोरों से धड़कने लगा। मैंने पास बैठकर बच्चे को दूध पिलाती धोबिन से कहा, 'अपने पति को कहो कि पीना बंद करे और चुप रहे। उसे पता होना चाहिए कि शरीफ़ आदमी कैसे रहते हैं।' 'वह मेरी बात कहां सुनता है,' वह बोली 'ठीक है, तो फिर मैं मेमसाब से कहकर इसे जेल में बंद करा देता हूं।'

'हूं जेल में बंद कराएगी,' धोबी बिफर गया 'मुझे, अरे वह खुद कोई सीता है क्या...' मैंने आगे कुछ और नहीं सुना। कूड़ेदान को आवेश में एक लात मार मैं घर की ओर दौड़ गया।

'अब ज़रा तू देख मैं क्या करता हूं, सूअर के बच्चे', धोबी की आवाज़ मेरा पीछा कर रही थी। घर पहुंचकर मैं साब के कमरे की ओर गया।

वह अपनी कुर्सी पर बैठे एक कागज़ को घूर रहे थे।

'आपको कुछ चाहिये साब', मैंने पूछा। मैं उनकी आवाज़ सुनना चाहता था। इत्तमिनान करना चाहता था कि वह नाराज़ नहीं थे, उन्होंने सब कुछ सुना नहीं था। 'मैं ठीक हूं, साब की आवाज़ भट्टी से निकले पिघले सीसे की तरह थी। बस तुम्हारी मेमसाब का इंतज़ार कर रहा हूं।'

'मैं बरामदे में बैठा हूं अगर आपको कुछ चाहिए तो...।' उन्होंने हाथ हिलाकर मुझे जाने को कहा।

मैंने तय किया कि कल सुबह इस धोबी से हिसाब चुकता करुंगा। तब तक उसका नशा भी उतर जाएगा। मैं जानता था वह अफ़सोस करेगा। रोएगा। दारु की एक बूंद न छूने की कसम खाएगा। बस अब मेमसाब जल्दी से लौट आएं। वह सब ठीक कर देगी। कचहरी में भी सब मामले सुलझा लेती हैं। वह जानती है साब को कैसे हंसाना है।

पर *होनी* अंधेरे में कहीं कुटिलता से फिर मुस्कुरा रही थी। 'हे संकटमोचन, मैं हर मंगल को उपवास करूंगा। इक्यावन रुपये का प्रसाद भी चढ़ाऊंगा। इस घर में सुख-शांति बनाए रखना।' मैंने हाथ जोड़कर विनती की।

रात की रानी की भीनी खुशबू और दूधिया चांदनी बरामदे में बिखर चुकी थी जब मेमसाब की गाड़ी आई। मैं झट उनका बैग उठाने के लिए भागा। वह थकी थीं पर फिर भी मुझे देख मुस्कुराई। 'मुझे भूख लगी है मंगू, खाना लगा दो', वह बोलीं।

'खाना तैयार है। बस एक मिनट में मेज़ पर लगाता हूं।' मैंने कहा 'बढ़िया। साब कहां है। 'शायद स्टडी में। 'अरे पर बत्ती क्यों नहीं जल रही', बुदबुदाते हुए वह स्टडी की ओर बढ़ीं। साब का गुस्सा अब तक शांत हो चुका होगा। मेमसाब आ चुकी थीं। वह सुरक्षित थीं। हम सब सुरक्षित हैं। अब सब ठीक हो जाएगा। मैं खाने की प्लेटें मेज़ पर सजा रहा था जब साब की गुस्से भरी आवाज़ सुनाई दी। वह मेमसाब पर कभी गुस्सा नहीं करते थे। आज से पहले मैंने उन्हें इतना नाराज़ कभी नहीं देखा था। मैं नहीं चाहता था कि वह मेमसाब से नाराज़ हों। वह थकी थीं। झगड़ा करने से पहले उन्हें खाना खाकर थोड़ा आराम तो करने देते। मुझे दोनों के बीच रमेश बाबू का नाम सुनाई दे रहा था।

'वह आदमी जो खुद को मेरा दोस्त कहता है।'

'तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। रमेश तो...'

'तुम दिल्ली उसी से मिलने गई थीं, बोलो। नहीं गई थीं?'

'वह तो चला गया...'

मैंने सोचा खाने के लिए बुला लूंगा तो दोनो चुप हो जाएंगे। खा-पीकर ठंडे दिमाग से सोच सकेंगे। मैं स्टडी के पास पहुंचता इससे पहले ही दरवाज़ा भड़ाक से खुला और मेमसाब बाहर निकलीं। उनका मुंह लाल था और आखों से ज्वाला निकल रही थी।

'मेमसाब, खाना तैयार है,' मैंने कहा।

'उस जानवर को खिलाओ। मैं जा रही हूं।' वह बोलीं।

'हां-हां जाओ,' साहब भी तैश में बाहर निकले। 'तुम यहां मेरे साथ क्यों रहोगी? अपने आशिक के पास रहो। जाओ। चली जाओ।' मैं हमेशा साब की इज़्ज़त करता था पर उस क्षण मुझे उनसे नफ़रत हो रही थी। मेरा मन किया कि दोनों कंधों को पकड़कर उन्हें झिझोड़ दूं, कहूं कि वह उस धोबी से अलग नहीं है, पर मैं ऐसा नहीं कर सकता था।

मेमसाब ने कोई जवाब नहीं दिया। साब की तरफ देखा भी नहीं। गाड़ी की चाबी उठाई और घर से बाहर निकल गई।

'अगर तुम अभी गई तो यहां कभी वापस मत लौटना। सुना तुमने? कभी वापस मत आना।'

मेमसाब ने सर हिलाया और गाड़ी में बैठ गई 'मेमसाब रुकिये।' मैं पीछे भागा। मैं उनके साथ जाना चाहता था। पर जब तक मैं पहुंचाता वह गैराज से बाहर निकल चुकी थी। उनकी गाड़ी की लाल बत्तियां कुछ देर दिखाती रहीं। फिर गुप्प अंधेरा छा गया।

मैंने साब से खाना खाने के लिए नहीं कहा। मैं उनका मुंह देखना नहीं चाहता था। उनसे बात नहीं करना चाहता था। बरामदे की सीढ़ियों पर हनुमान चालिसा का पाठ करते हुए मैं मेमसाब के लौटने का इंतज़ार करने लगा।

पता नही उस समय क्या वक़्त था जब मैंने साब को फोन पर चीखते हुए सुना।

'क्या?'

'नहीं'

'कहाँ?'

'कैसे?'

'मैं आ रहा हूं।'

उनकी आवाज़ टूटी हुई थी। फोन पटककर उन्होंने मुझे आवाज़ लगाई। मुझे समझ में नहीं आया कि वो क्या बोल रहे थे। बस इतना जान पाया कि मेमसाब को कुछ हो गया था। मैंने उन्हें दौड़कर गाड़ी में बैठ बाहर जाते हुए देखा। वह मेरी ज़िंदगी के सबसे मुश्किल घंटे थे। मुझे पता नहीं था कि क्या हुआ था। नहीं जानता था कि मेमसाब कहां थी। सुबह की किरणें फूट रही थी और चिड़ियों की चहचहाहट कानों में पड़ रही थी जब साब घर लौटे। उनको देखकर लगा जैसे एक रात में उनकी उम्र दस साल बढ़ गई हो।

'मेमसाब कहां है?' मैंने पूछा

उन्होंने सर हिलाया और धम्म से कुर्सी पर बैठ गए। दोनों हाथों से अपना चेहरा ढांप कर वह ज़ोर-ज़ोर से सुबकने लगे। उनका पूरा शरीर उनके दुख के वेग से झुक गया। पर मेरे मन में साब के प्रति कोई सहानुभूति नही थी।

बाद में पता चला कि मेमसाब की गाड़ी एक तेल के टैंकर से टकरा गई थी, उसमें आग लग गई थी। मेमसाब को जब गाड़ी से बाहर निकाला गया तब तक आग उन तक नहीं पहुंची थी। वे जीवित थीं। पर अस्पताल ले जाते समय, साब के पहुंचने से पहले ही वह मर चुकी थीं। वे हाईवे पर क्यों गई मैं समझ ही नहीं पाया था। शायद रास्ता भटक गई होंगी। मुझे पता नहीं। बस पता था तो बस यही कि मैं तीसरी बार यतीम हो चुका था।

अब मेरे पास करने को कुछ भी नहीं बचा था सिवाय नौकरी छोड़ने के। साब ने नहीं पूछा कि मैं क्यों जा रहा था। उन्होंने मुझे रोका भी नहीं। बस इतना कहा कि मेरी अच्छी सिफ़ारश कर देंगे। मैं बिना कुछ बोले चला आया। पढ़े-लिखे अमीरों के साथ बहुत काम कर चुका था। धोबी ने मुझसे बात करने की कोशिश की थी। उसके पान से सड़े दांतों के बीच खिसियाई सूरत देखते ही मैं आपा खो बैठा था। उसे नर्क में सड़ने की बददुआ देकर मैं चलता बना।

आजीविका के लिए अब साईकिल सुधारने का काम करता हूं। ट्यूब में पंचर लगाता हूं। ब्रेक कसता हूं। टूटे पहिए जोड़ता हूं, कमानियां सीधी करता हूं। स्कूल आने जाने वाले उन तमाम लड़के-लड़कियों की बदौलत मैं दो जून की रोटी जुगाड़ पाता हूं। कभी-कभी कोई कमानी सीधी करते या पेंच कसते-कसते ज़ेहन में उस खौफ़ से सराबोर खुशबूदार रात का मंज़र आंखों के सामने कौंध जाता है। फिर एक युवा आवाज़ तंद्रा तोड़कर मुझे वापस खींच लाती है। 'जल्दी कर दो भाई। मैं स्कूल के लिए लेट हो जाऊंगा।' मैं अपने चेहरे पर जमी उन कौतूहल भरी आंखों में झांककर कहता हूं— 'बस हो गया, तुम अपने रास्ते जल्दी ही पहुंच जाओगे।'

इस अंक के रचनाकारों के बारे में

रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861) कोलकाता में जन्मे, *गुरुदेव* कहलाए जाने वाले कवि, साहित्यकार, दार्शनिक व एशिया के प्रथम नोबेल पुरस्कार विजेता हैं। उनकी दो रचनाएं *जन गण मन* व *आमार सोनार बांग्ला* क्रमशः भारत व बांग्लादेश का राष्ट्रगान बनीं।

इस्मत चुगताई (1915) उर्दू की नामचीन लेखिका हैं। महिलाओं से संबंधित मुद्दों को बेबाक़ व संजीदगी से कलमबद्ध करना उनके लेखन की खास पहचान है। कहानियों में *लिहाफ़* व *चौथी का जोड़ा* मशहूर हैं।

विजयदान देथा (1926) राजस्थानी साहित्य के एक मज़बूत स्तंभ हैं जिन्हें प्यार से *बिज्जी* संबोधित किया जाता है। लगभग 800 से अधिक पत्रों, लोककथाओं व अनुवादों के रचनाकार *बिज्जी* की शैली में ठेठ क्षेत्रीय बोली का प्रभाव अनूठा है। *पहेली, चरणदास चोर, उलझन* उनकी विशेष रचनाएं हैं।

मन्नू भंडारी (1931) का जन्म मध्यप्रदेश के भानपुरा जिले में हुआ था। लेखन उनको अपने पिता से विरासत में मिला था। मन्नू जी ने दिल्ली के मिरांडा हाउस में कई वर्षों तक अध्यापन कार्य किया है। उनकी प्रमुख रचनाओं में *महाभोज, आपका बंटी* व *यही सच है* उल्लेखनीय हैं।

वाजिदा तबस्सुम (1935) महाराष्ट्र के अमरावती जिले में पैदा हुईं। इस प्रसिद्ध उर्दू कहानीकार के लेखन में दक्खिनी उर्दू का पुरज़ोर प्रभाव देखने को मिलता है। उनकी बेहतरीन कृतियों में *फूल खिलने दो, कैसे समझाऊं* व *ज़र, जन, ज़मीन* शामिल हैं।

उषा यादव (1948) आगरा विश्वविद्यालय में हिन्दी की प्रोफेसर हैं। उनके छः कहानी संग्रह, आठ उपन्यास व एक काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। ये बच्चों के लिए कहानियां भी लिखती हैं। उनके लेखन का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया गया है।

विजयलक्ष्मी चौहान फिलेडेल्फिया के कम्यूनिटी कॉलेज में अध्यापिका हैं। औरतों के जीवन के नैतिक व मनोवैज्ञानिक संघर्ष उनके लेखन के प्रमुख विषय हैं। *पॉमेग्रेनेट ड्रीम्स व अदर स्टोरीज़* उनकी प्रमुख रचना है।

जागोरी प्रकाशन

तब से अब तक

प्रिय साथियों,

हमें आप सभी से यह बांटते हर्ष हो रहा है कि 'जागोरी' महिला आन्दोलन का अभिन्न हिस्सा बन, अपने पच्चीस साल के पड़ाव पूरी कर चुकी है। दो दशकों से भी ज़्यादा के अपने निरन्तर सफ़र के दौरान हमने औरतों के हकों की जंग और जश्न, दोनों ही अनुभवों को, अपनी नारीवादी राजनीति में पिरोया है। जागोरी नोटबुक इन्हीं टेढ़े&मेढ़े, सरल सबल विचारों के सफ़र का आईना रही है। हमने इन नोटबुकों के ज़रिए औरतों के जीवन के बहुत से अनछुए कोनों को रंगों, चित्रों और लेखनी के मार्फ़त आपसे पहले भी बांटा है। ग्रामीण, शहरी, कस्बों से आई औरतों की बातें उनकी अपनी ही ज़बानी इन नोटबुकों की खासियत रही है और इस यात्रा में बहुत से साथियों के अनुभवों का कांरवा भी साथ चला है।

पच्चीस सालों के इस अमूल्य इतिहास को समेटने का प्रयास हमारी इस दफ़ा की नोटबुक का खास आर्कषण है। कई कान्फ्रेन्सों, जलसों, जुलुसों में आज भी जब हम इक्ट्ठे होती हैं तो कई साथी याद करते हैं पुराने नोटबुक और रचनात्मक तरीकों से उठाए गए उनमें संगीन, पेचीदे और संवेदनशील मुद्दों को। हमने सोचा, क्यों न हम पिछले बीस सालों (1988–2009) में प्रस्तुत नोटबुकों की एक माला पिरोयें और पेश करें एक ऐसी कृति जिसमें झलक हो सालों से चले आ रहे औरतों के संघर्ष की, महक हो पुराने नोटबुक के चित्रों और रंगों की और हो जश्न का एहसास।

आर्डर करने के लिए कृपया हमें लिखें
बी–114, शिवालिक, मालवीय नगर, नई दिल्ली–110017
distribution@jagori.org पर ईमेल करें
011–26691219 / 26691220 पर फोन करें
सहयोग राशिः रुपए 150 / –

लुटा-लुटा सा चांद

मां!
करवा चौथ का चांद उगा है अभी-अभी
खिड़की से झांक रहा है लाल-लाल।
तुमने व्रत किया होगा
तुमने भी देखा होगा यह चांद
जो यहां उगा है
वहां भी उगा होगा साथ-साथ।
तुम पहले भी यह व्रत करती थीं
जब मैं बच्ची थी।
उस समय तुम यह व्रत करती थीं
मेरे पिता की रक्षा के लिए
यानी अपने पति के लिए
जिसने कभी तुम्हें प्रतिष्ठा नहीं दी।
तुमने सदा सेवा की
उसकी, उसके मां-बाप की
उसके भाई-भतीजों की, सारे परिवार की।
चतुर्मुखी शोषण होता था तुम्हारा
तुम थक जातीं, विरोध उमड़ता मन में
फरियाद करतीं पिता से
तो खीझे से रहते वे
खिंची सी रहतीं तुम।
यूं ही बीत गयीं कितनी करवा चौथ!
कितनी बार यह चांद निकला
देखा तुमने, अर्घ्य दिया
और उपवास तोड़ा।
हां, जब तुम कुवांरी थी
तब भी तो करती थीं तुम यह व्रत
अपने भाइयों के लिए
अपनी राखी की लाज के लिए।
किन्तु उन भाइयों ने तो
तुम्हारी इच्छा-विरुद्ध
नाम कटवा दिया तुम्हारा स्कूल से
कर दिये तुम्हारे हाथ पीले—
यह रक्षा थी तुम्हारी या उनकी?
तुम गीले नेत्र लिए आ गयीं
अन्य देहरी से जुड़े घर में।
और वह देहरी
कभी नहीं लांघी आज तक।
अब तुम व्रत करती हो
उस देहरी के अन्दर
अपने पुत्रों के लिए।
और वे पुत्र ढो रहे हैं तुम्हें
एक कर्तव्य के बोझ की तरह।
कहां वह अपनत्व?
कहां वह ममता?
जो तुमने लुटाई जीवन भर
क्या उसका एक कण भी मिला तुम्हें?
देखो न, हर साल
यूं ही यह चांद आता है
अर्घ्य लेकर चला जाता है
खोया-खोया सा
लुटा-लुटा सा।

पूर्णिमा केडिया

'मानुषी' से साभार